॥ श्रीः ॥

श्रीमच्छङ्करावतारश्री १०८ च्युतशङ्कराचार्य्य-
भगवत्पादविरचितः

तत्वबोधः ।

व्याकरणाचार्य्यपंडितमदनमोहनपाठक
कृत भाषानुवादसहितः ।

जिसे
फ्रीमेन कंपनी लिमिटेड
व
मैनेजर भार्गव पुस्तकालय ने
॥ काशी ॥
तारा यन्त्रालय में छपवा कर प्रकाश किया ।

॥ श्रीः ॥

श्रीमच्छङ्करावतारश्री १०८ युतश्रीशङ्करा
चार्यभगवत्पादविरचितः ।

तत्त्वबोधः ।

न्याकरणाचार्यपण्डित—मदनमोहनपाठक-
कृतभाषानुवादसहितः ।

जिसे
फ्रीमेन कम्पनी लिमिटेड
व
मैनेजर भार्गव पुस्तकालय ने
प्रकाशित किया ।

सन् १९११ ई० ।
काशी तारा यन्त्रालय ।

उपोद्घात ।

संसारी मनुष्यों को सदा सुखकी इच्छा बनी रहती है । वे सदाही सुखके लिये लालायित रहते हैं । कोई पुत्र के लिये दुखी रहते हैं, और कोई धनके लिये माथा पच्ची किया करते हैं । इन में कितनेही पुत्रवान भी होजाते हैं, और कितने धनवान् भी हो जाते हैं । तब भी वे दुखी ही दिखाते हैं । जो कुछ ये चाहते थे उसे पाकर भी इन्हें दुखी देख यह प्रश्न होता है कि क्या हम जिसे सुख देने वाला समझते थे वह सुख देने वाला नहीं है ? इस प्रश्न के उत्तर में हम बहुत कुछ हाथ पैर मारकर भी जब कोई सहज उपाय नहीं देखते तब तत्त्वदर्शी गुरु की शरणही एक आधार दिखाता है । कृपालु गुरु हम से कृतघ्नों पर भी दया करके योग्यता के अनुसार हमें वेद के मुख्य सिद्धान्तों का उपदेश करते हैं जिसके विचार से हम सुख मोक्षपद पाते हैं ।

जिन वैदिक सिद्धान्तों से हमें सुख होता है, उन्हें

विद्वान् लोग उपनिषद् अथवा वेदान्त कहते हैं। वेदान्त शास्त्र बडा गहन और विचार करने का विषय है। वह विषयी लोगों के मनमें सहजही में नहीं आता, यह विचारकर श्री १०८ मान् भगवान् शङ्कराचार्यजीने अल्पज्ञ लोगों के लिये 'तत्त्वबोध' नामका एक छोटा सा ग्रन्थ बना दिया है। इस उपाय से मानो वेदान्त समुद्र को आचार्यपाद ने बावली बना दिया। इतने पर भी यह ग्रन्थ संस्कृत में होने से सबको सुलभ नहीं होता इससे बनारसी भार्गव पुस्तकालय के मैनेजर ने मुझसे इसको सरल भाषा में अनुवाद करने को कहा। उक्त मैनेजर साहब की आज्ञा-नुसार मैंने इस का भाषानुवाद करदिया। जहांतक बना वहां तक भाषा सरल करने का उद्योग किया गया है। आशा है कि जिज्ञासु लोग इस ग्रन्थ से गूढ वेदान्त के तत्त्व को सहज में समझ सकेंगे।

यदि जिज्ञासु जन इससे लाभ उठावेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा, और और ग्रन्थ भी उनकी सेवा में भेजूंगा। मैंने बडी सावधानी से इस ग्रन्थका अनुवाद

किया है। इतने परभी यदि कहीं अशुद्धियां रह गई हों तो दया कर उसे पाठक महोदय सुधार लेवें ॥

२६ मार्च । १९०७

आपका हितकर
पं. मदनमोहन पाठक
गाय घाट बंगाली बाड़ा
श्रीकाशी क्षेत्र

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ तत्त्वबोधः प्रारभ्यते ।

हम आस्तिक लोग जब किसी कार्य को आरंभ करते हैं तब मंगलाचरण अवश्य करते हैं । इस विषय में हमारा विश्वास है कि मंगलाचरण से दो बात होती है । पहिली बात विघ्न का नाश, और दूसरी उस कार्य की समाप्ति जिसके प्रारंभ में हमने मंगलाचरण किया था । हमारा सिद्धान्त है कि प्रत्येक कार्य की सिद्धि में जैसे उसकी सामग्री की आवश्यकता है वैसेही विघ्नों का न होना भी आवश्यक है । जैसे उन २ सामग्रियों से वे २ कार्य सिद्ध होते हैं, वैसेही विघ्नों के न होने से भी कार्य सिद्ध होते हैं । ग्रंथ समाप्ति में कारण सामग्री बुद्धि कल्पना और सदसद्विवेक आदि हैं वैसेही एक विघ्न का न होना भी है । इस लिये ग्रंथ के आरम्भ में मंगल करना आवश्यक जान पडता है । इस परिपाटी के पालन से हमें एक लाभ और होता है, जिसे हमलोग परंपरा कहते हैं । यदि हम लोग

मंगलाचरण करते हैं तो हमें यह विश्वास होता है कि, यदि कदाचित हमारे शिष्यगण भी ग्रंथ बनावेंगे तो वेभी मंगलाचरण करेंगे। यही कारण हुआ कि हम मंगलाचरण को ग्रंथ का एक अंग मान कर उसे ग्रंथ के आदि में मिलादेते हैं, और उससे एक उत्तम परिपाटी का निर्वाह करते हैं। अब हमें यह भी विचारना आवश्यक है कि हम किस देवता का मंगलाचरण करें ? इस विचार का निर्णय ग्रंथ के विषय पर ही निश्चित है, अतः जिस ग्रंथ में जो विषय हो उसी के अनुसार मंगलाचरण भी होना उचित है॥

इसी अनादि सिद्ध परिपाटी का पालन करने की इच्छा से भगवान् शङ्कराचार्यजी (तत्त्वबोध) के प्रारंभ में मंगलाचरण करते हैं।

(मूल) वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं नत्वा ज्ञानप्रदं गुरुम्॥ मुमुक्षूणां हितार्थाय तत्त्वबोधोऽभिधीयते॥ १॥

अर्थ--मोक्ष साधन ज्ञान के देने वाले, योगियों में श्रेष्ठ वासुदेवेंद्र योगिराज गुरु को प्रणाम करके। मोक्षपद की

चाहना करने वाले मनुष्यों के लिये तत्त्वबोध का कथन करता हूं ॥ १ ॥

(मूल) साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणां मोक्ष-साधनभूतं तत्त्वविवेकप्रकारं वक्ष्यामः ॥२॥

(अर्थ) मोक्ष पद की प्राप्ति के चार प्रकार के उपायों को साधने वाले अधिकारी जनों के लिये जो मोक्ष में साधन है, उस तत्त्वों के भेद विचार को कहता हूं। जगत् का उपादान कारण सत् चित् आनंद रूप परमेश्वर है। वही माया के आवेश से जीव अवस्था को प्राप्त होता है, और पृथिवी जल तेज वायु और आकाश में अपना रूप देखता है। तत्त्व के बोध से वह पंचमहाभूत से अपने को अलग समझता है। इससे तत्त्वबोध का प्रकार कहना अति आवश्यक है ॥ २ ॥

(मूल) साधनचतुष्टयं किम् ? नित्यानित्य वस्तु विवेकः, इहामुत्रार्थ फलभोगविरागः, शमदमादिषट्सम्पत्तिः, मुमुक्षुत्वं चेति ॥३॥

(अर्थ) मोक्ष के चारो साधन कौन २ हैं ? नित्य

पदार्थ और अनित्य पदार्थ का भिन्न २ ज्ञान, इस लोक के और परलोक के पदार्थ और उनसे होने वाले फलों में वैराग्य, शम दम आदि छओ पदार्थों का संपादन, और मोक्षपद की इच्छा येही चारो साधन हैं ॥ ३ ॥

(मूल) नित्यानित्यवस्तुविवेकः कः ? नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म, तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यम्, अयमेव नित्यानित्यवस्तुविवेकः ॥ ४ ॥

(अर्थ) नित्य पदार्थ और अनित्य पदार्थ का विवेक किस को कहते हैं ? नित्य पदार्थ केवल ब्रह्म है । उसको छोड़ कर और जितने पदार्थ हैं सब अनित्य अर्थात् मिथ्या वा असत् हैं । इसी ज्ञान को नित्यानित्यवस्तुविवेक कहते हैं ॥ ४ ॥

(मूल) विरागः कः ? इहस्वर्गभोगेषु इच्छा-राहित्यम् ॥ ५ ॥

(अर्थ) विराग किसे कहते हैं ? इस लोक के और स्वर्ग आदि परलोक के सुख आदि भोग करने की इच्छा का त्याग करना । अर्थात् इस लोक और परलोक के सुख

भोग की वासना को हटा देना इसे विराग कहते हैं ॥५॥

(मूल) शमादिसाधनसम्पत्तिः का ? शम-
दम उपरतिस्तितिक्षा श्रद्धा समाधानं
चेति ॥ ६ ॥

(अर्थ) शम आदि साधनों की संपत्ति का क्या अर्थ है ? शम दम उपरम तितिक्षा श्रद्धा और समाधान, इन छओं साधनों का होना शम आदि साधन संपत्ति कहाता है । शम शांति, दम इन्द्रियों का रोकना, उपरम कर्तव्य का अनुष्ठान, तितिक्षा शीतादि का सहना, श्रद्धा गुरु आदि के वाक्य में विश्वास, समाधान चित्त की एकाग्रता, येही छः साधन हैं ॥ ६ ॥

[मूल] समः कः ? मनोनिग्रहः । दमः कः ?
चक्षुरादि बाह्येन्द्रियनिग्रहः । उपरमः
कः ? स्वधर्मानुष्ठानमेव । तितिक्षा का ?
शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम् । श्रद्धा
कीदृशी ? गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः
श्रद्धा । समाधानं किम् ? चित्तैकाग्रता ॥७॥

(अर्थ) शम किसे कहते हैं ? मन के रोकने को शम कहते हैं। दम का क्या अर्थ है ? नेत्र कर्ण जिव्हा घ्राण और त्वचा आदि बाहरी इन्द्रियों के रोकने को दम कहते हैं। उपरम किसे कहते हैं ? अपने निज धर्म का ही अनुष्ठान करना अर्थात् शब्द आदि विषयों से इन्द्रियों को रोककर और सब लौकिक बिचारों से हटा कर केवल आत्म विचार में तत्पर रहना, इसे दम कहते हैं। तितिक्षा किसे कहते हैं ? शीत उष्ण, सुख दुःख, मान अपमान, आदि का धैर्य से सहलना इसे तितिक्षा कहते हैं। श्रद्धा कौनसी वस्तु का नाम है ? गुरु के वाक्यों को और वेदान्त के वाक्यों को विश्वासपूर्वक यथार्थ समझना श्रद्धा कहाती है। समाधान का क्या अर्थ है ? चित्त की एकाग्रता को अर्थात् गुरु और वेदान्त के वाक्यों को एकान्त में विचार करना वा उसे और अधिकारि को बताना समाधान कहाता है। इसेही शम आदि छः साधन कहते हैं ॥७॥

(मू०) मुमुक्षत्वं किम् ? मोक्षो मे भूयादितीच्छा ॥ ८ ॥

(अर्थ) मुमुक्षुत्व का क्या अर्थ है ? मुझे मोक्ष पद मिले ऐसी इच्छा का होना। अर्थात् मुझे किसी प्रकार के सांसारिक दुःखों से संयोग न हो इस इच्छा वाले को मुमुक्षु कहते हैं ॥ ८ ॥

(मूल) एतत्साधनचतुष्टयम् । ततस्तत्त्वविवेकस्याधिकारिणो भवन्ति । तत्वविवेकः कः ? आत्मा सत्यस्तदन्यत्सर्वं मिथ्येति ९

(अर्थ) ये चारों मोक्ष के साधन हैं। इनकी साधना के अनन्तर तत्त्व विवेक के अधिकारी होते हैं। अर्थात् इन चारों की साधना से यह तत्त्व ज्ञान होता है जो महाभूतों से आत्मा को भिन्न सिद्ध करदेता है। तत्त्व विवेक किसे कहते हैं ? आत्मा सत्य है, और उसके सिवाय और जितने जगत के पदार्थ हैं वे सब मिथ्या हैं इसी को तत्त्व विवेक कहते हैं ॥ ९ ॥

(मूल) आत्मा कः ? । स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तः पञ्चकोशातीतः सन्नवस्थात्र

यसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपः सन् य-
स्तिष्ठति स आत्मा ॥ १० ॥

(अर्थ) आत्मा किसे कहते हैं ? । स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर से अन्य, अन्नमय आदि पांचे कोशों से दूर, और जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति रूप तीन अवस्थाओं का साक्षी होकर जो सत चित और आनन्द स्वरूप से रहता है उसे आत्मा कहते हैं । अर्थात् आत्म वह है, जो स्थूल सक्ष्म और कारण शरीर से अलग है, जो अन्नमय प्राणमय आदि पांचों कोशों से दूर है, जो जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति का साक्षी है, और जो सत चित् आनन्द रूप है ॥ १० ॥

(मूल) स्थूलशरीरं किम् ?। पञ्चीकृत पञ्च-
महाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुखदुःखादि-
भोगायतनं शरीरं, अस्ति जायते वर्धते
विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यतीति
षड्विकारवदेतत्स्थूलशरीरम् ॥ ११ ॥

(अर्थ) स्थूल शरीर किसे कहते हैं? । पञ्चीकृत पृथिवी आप तेज जल और आकाश आदि पांचों महाभूतों से किया गया, कर्मों के द्वारा उत्पन्न, सुख और दुःख आदि के भोगने का प्रधान आश्रय, नाश होने वाला, और स्थिति उत्पत्ति वृद्धि घटना बढना ढीला पड़ना और नाश रूप छहों विकार वाला स्थूल शरीर कहलाता है। तात्पर्य यह है कि पृथिवी आदि पांचों महाभूतों के पञ्चीकरण से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। महाभूतों के पञ्चीकरण का यह प्रकार है कि प्रथम आकाश को दो भागों में बांटकर एक भाग को अलग रखदेना । फिर दूसरे भाग को चार भाग में बांट कर अलग रखे हुए आधे भाग को इसी प्रकार बांटे गये वायु के भागों में मिलादेना । इसी भांति वायु का विभाग करके उसे तेज भाग में मिला देना। तेज भाग को बांट कर जल भाग में मिला देना । जल को बांटकर पृथिवी में मिला देना। इन्हीं भागों के मिलाव को पंचीकरण कहते हैं । इसी पंचीकरण अवस्था का नाम स्थूल शरीर है। जब फिर पृथिवी आदि भूतों के भागों को अलग २ करके अपने २ कारण महाभूतों में

लीन कर देते हैं तब स्थूल शरीर का नाश हो जाता है। इस स्थूल शरीर के सहायक उपादान कारण शुभ अशुभ कर्म हैं। शुभ अशुभ कर्मों से सुख दुःख का भोग उत्पन्न होता है। स्थूल शरीर इनका भोग करता है। इस स्थूल शरीर की छः अवस्था होतीं हैं। प्रथम अवस्था अस्ति है। अस्ति शब्द का अर्थ है सत्ता, अर्थात् उत्पन्न होना। द्वितीय अवस्था जनन, अर्थात् उत्पन्न होना है। तृतीय अवस्था वर्धन अर्थात् कदाचित् बढना और कदाचित् घटना। चतुर्थ अवस्था विपरिणाम अर्थात् क्रम से बढना। पंचम अवस्था अपक्षय, अर्थात् वृद्ध आदि होने पर शरीर शिथिल होना। और छठवीं अवस्था नाश अर्थात् शरीर का पात होना। इसी को लोग स्थूल शरीर कहते हैं॥ ११॥

(मूल) सूक्ष्मशरीरं किम्?। अपञ्चीकृतपञ्च-महाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुखदुःखादि-भोगसाधनं पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च प्राणादयः मनश्चैकं बुद्धिश्चैका एवं सप्तदशकलाभिः सह

यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्मशरीरम् ॥ १२ ॥

(अर्थ) सूक्ष्म शरीर किसे कहते हैं ?। अपञ्ची-कृत पृथिवी आदि पांचों महाभूतों से बना, कर्मों से उत्पन्न, सुख दुःख आदि के भोगने का साधन, पांच ज्ञान इन्द्रियों के, पांच कर्म इन्द्रियों के, पांच प्राणों के, एक मन के, और एक बुद्धि के, इस भांति सत्रह कलाओं के साथ जो रहता है वह सूक्ष्म शरीर कहाता है। अर्थात् सूक्ष्म शरीर में पंचमहाभूतों के पचीस भाग नहीं होते। कर्म उसका सहायक है। वह सुख दुःख का भोगने वाला है। उसमें नेत्र कर्ण श्रवण नासिका और स्पर्श इन्द्रियां रहती हैं। वाक् हस्त पाद गुदा और उपस्थ भी रहते हैं। प्राण व्यान समान उदान और अपान आदि प्राण भी रहते हैं। मन भी रहता है। और बुद्धि भी होती है। इन्हीं सत्रहों कलावाले शरीर को सूक्ष्म शरीर कहते हैं ॥ १२ ॥

(मूल) श्रोत्रं त्वक् चक्षुः रसना घ्राणमिति पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि । श्रोत्रस्य दिग्दे-वता । त्वचो वायुः । चक्षुषः सूर्यः ।

रसनाया वरुणः । घ्राणस्याश्विना इति ज्ञानेन्द्रियदेवताः । श्रोत्रस्य विषयः शब्दग्रहणम् । त्वचो विषयः स्पर्शग्रहणम् । चक्षुषो विषयो रूपग्रहणम् । रसनाया विषयो रसग्रहणम् । घ्राणस्य विषयो गन्धग्रहणमिति ॥ १३ ॥

(अर्थ) श्रोत्र-कान, त्वक-स्पर्श की इन्द्रिय, चक्षु-नेत्र, रसना-जिह्वा, और घ्राण-नासिका, ये पाचा ज्ञान इन्द्रिय हैं। श्रोत्र इन्द्रिय की देवता दिशा है । त्वक् इन्द्रिय की देवता वायु है। चक्षु इन्द्रिय की देवता सूर्य है। रसना इन्द्रिय की देवता वरुण है । घ्राण इन्द्रिय की देवता अश्विनीकुमार हैं। श्रोत्र इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान होता है। त्वक् इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान होता है। चक्षु इन्द्रिय से शुक्ल आदि रूपका ज्ञानें होता है। रसना इन्द्रिय से मधुर आदि रस का ज्ञान होता है। घ्राण इन्द्रिय से सुगन्धि और दुर्गन्धि का ज्ञान होता है॥ १३॥

[मूल] वाक्पाणिपादपायूपस्थानीति पञ्च

कर्मेन्द्रियाणि । वाचो देवता वह्निः । हस्तयोरिन्द्रः । पादयोर्विष्णुः । पायोर्मृत्युः । उपस्थस्य प्रजापतिरितिकर्मेन्द्रियदेवताः। वाचो विषयो भाषणम् । पाण्योर्विषयो वस्तुग्रहणम् । पादयोर्विषयो गमनम्। पायोर्विषयो मलत्यागः । उपस्थस्य विषयो आनन्द इति ॥१४॥

(अर्थ) वाक्-वाणी, पाणि-हस्त, पाद-चरण, पायु-गुदा, और उपस्थ-लिङ्ग ये पाचों कर्म इन्द्रिय हैं। वाक् इन्द्रिय का देवता अग्नि है । हस्त इन्द्रिय की देवता इन्द्र है । पाद इन्द्रिय की देवता विष्णु है । गुदा इन्द्रिय की देवता मृत्यु है । लिङ्ग इन्द्रिय की देवता प्रजापति हैं। वाक् इन्द्रिय से बोलते हैं । हस्त से वस्तुओं को ग्रहण करते हैं । पैर से गमन करते हैं। गुदा से मल त्याग करते हैं । लिङ्ग से विषयानन्द करते हैं ॥ १४ ॥

(मूल) कारणशरीरं किम् ? । अनिर्वाच्याना-

अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं शरीरद्वयकारणमात्रंसत्स्वरूपाज्ञानं निर्विकल्परूपं यदस्ति तत्कारणशरीरम् ॥ १५ ॥

(अर्थ) कारण शरीर किसे कहते हैं ? । अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या रूप जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर का केवल कारण है, जो सत्स्वरूप अज्ञान है, और जिस में किसी विशेषता का ज्ञान नहीं होता उसे कारण शरीर कहते हैं, तात्पर्य यह है कि कारण शरीर कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जासकता है कि माया कारण शरीर है माया अनिर्वचनीय है अर्थात् उसका स्पष्ट २ अर्थ नहीं हो सकता । न तो उसे सत कह सकते हैं, क्यों कि ब्रह्मज्ञान होने पर उसका नाश हो जाता है, और न उसे मिथ्या कह सकते हैं, क्योंकि फिर उससे जगत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती । इससे उसे अनिर्वचनीय स्वीकार करते हैं । माया अनादि भी है और उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती । यही माया सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का कारण है । इसे सत्स्वरूप अज्ञान कहते हैं । इस में किसी

प्रकार के विशेष का सम्बन्ध नहीं होता। अतएव यही कारण शरीर है ॥ १५ ॥

(मूल) अवस्थात्रयं किम् ?। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाः ॥ १६ ॥

(अर्थ) तीन प्रकार की अवस्थाएं कौन २ हैं ? प्रथम जाग्रत अवस्था है। द्वितीय स्वप्न अवस्था है। और तृतीय सुषुप्ति अवस्था है ॥

(मूल) जाग्रदवस्था का ?। श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियः शब्दादिविषयैश्चज्ञायते इति यत्सा जाग्रदवस्था। स्थूलशरीराभिमानी आत्मा विश्व इत्युच्यते ॥ १७ ॥

(अर्थ) जाग्रत अवस्था किसे कहते हैं ?। श्रोत्र त्वक् नेत्र रसना और घ्राण इन्द्रियों से जब शब्द स्पर्श रूप रस और गंध का ज्ञान होता है, उस जाग्रत अवस्था कहते हैं। "स्थूल शरीर मेरा है" यह अभिमान करने वाला आत्मा विश्व कहलाता है। यद्यपि स्थूलशरीराभिमानी

आत्मा अपनी अवस्था से भिन्न ही है, क्योंकि वह नित्य है और उसकी अवस्था तथा स्थूलशरीर मिथ्या है, तौ भी स्थूल शरीर का अभिमान करने से आत्मा का नाम विश्व पड जाता है ॥ १८ ॥

(मुल) स्वप्नावस्था का ? इति चेत्। जाग्रद्-
वस्थायांयद्दृष्टं यच्छ्रुतं तज्जनितवास-
नया निद्रासमये यः प्रपञ्चः प्रतीयते
सा स्वप्नावस्था। सूक्ष्मशरीराभिमानी
आत्मा तैजस इत्युच्यते ॥ १८ ॥

(अर्थ) स्वप्न अवस्था किसे कहते हैं ? जागते हुए जो कुछ दिखाता है वा जो कुछ सुना जाता है उस से आत्मा में एक प्रकार की वासना उत्पन्न हो जाती है। निद्रा लगजाने पर इसी वासना के प्रभाव से जो संसार देख पडता है वही स्वप्न अवस्था है। इस स्वप्न अवस्था को कोई २ सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इस सूक्ष्म शरीर के अभिमान करने वाले प्रकाशमान भोक्ता और साक्षी आत्मा को तैजस कहते हैं ॥ १८ ॥

(मूल) अतः सुषुप्त्यवस्था का ?। अहंकिमपि न जानामि, सुखेन मया निद्रानुभूयत इति सुषुप्त्यवस्था । कारणशरीराभिमानी आत्मा प्राज्ञइत्युच्यते ॥ १९ ॥

(अर्थ) सुषुप्ति अवस्था किसे कहते हैं ? "मैं ने कुछ नहीं जाना" "मै ने बडे सुख से निद्रा की" यह ज्ञान जिस अवस्था में होता है वह अवस्था स्वप्न कहाती है। तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति अवस्था में निद्रा सुख के सिवाय और किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता। तब भी आत्मा का प्रकाश बना रहता है। इस से सुषुप्ति के बाद वह कहता है कि "मैं सुख से सोया, मुझे और कुछ नहीं ज्ञान पडता था"। यह कहना ही इस बात का साक्षी है कि उसे उस समय भी सूक्ष्म ज्ञान था, परंतु निद्रा के वेग से वह स्पष्ट २ किसी वस्तु का ज्ञान नहीं कर सकता था। सुषुप्ति के बाद फिर पर्व ज्ञान लौट आता है। इस से जिस समय विशेष ज्ञान न हो केवल ज्ञान ही हो उस समय को सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था को कारण शरीर

और आनन्दमय कोश भी कहते हैं। कारण शरीर के अभिमानी आत्मा को प्राज्ञ अर्थात् इन्द्रियों की सहायता के बिनाही स्वप्नकथा से वासना रूप विषयों का भोगने वाला आत्मा कहते हैं ॥ १९ ॥

(मूल) पञ्चकोशाः के? । अन्नमयः प्राणमयो मनोमय विज्ञानमय आनन्दमयश्चेति ॥ २० ॥

(अर्थ) पाचों कोश कौन २ हैं ? । अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, और आनन्दमय कोश, ये पाचों कोश हैं। कोश शब्द का अर्थ है आच्छादन करना, और ये पांचों आत्मा के आच्छादन करनेवाले हैं इस से कोश कहाते हैं ॥ २० ॥

(मूल) अन्नमयः कः ? । अन्नरसेनैवभूत्वा अन्नरसेनैव वृद्धिं प्राप्यान्नरूपपृथिव्यां यद्विलीयते तदन्नमयः कोशः, स्थूलशरीरम् ॥ २१ ॥

(अर्थ) अन्नमय कोश किसे कहते हैं ?। अन्न के रस सेही जो उत्पन्न होता है, अन्न के रसमेंही जो बढता है, और अन्न रूप पृथ्वी में जो लीन हो जाता है उस अन्नमय कोश अर्थात् स्थूल शरीर कहते हैं॥ २१ ॥

(मूल) प्राणमयः कः ?। प्राणादिपञ्चवायवो वागादीन्द्रियपञ्चकं प्राणमयः ॥२२॥

(अर्थ) प्राणमय कोश किसे कहते हैं ? । प्राण, अपान, व्यान, समान, और, उदान रूप पांचों प्राण वायु समूह को, और वाक् पाणि पाद पायु और उपस्थ रूप पांचों कर्मेन्द्रियों को प्राणमय कोश कहते हैं । प्राणमय कोश का दूसरा नाम क्रिया शक्ति भी है । क्योंकि प्राणमय कोश के सहारे ही शरीर की सब क्रिया होती है ॥२२॥

(मूल) मनोमयः कोशः कः ?। मनश्चज्ञानेन्द्रियपंचकं मिलित्वा भवति स मनोमयः कोशः ॥ २३ ॥

(अर्थ) मनोमय कोश किसे कहते हैं ? । मन और

श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा और घ्राण रूप पांचों ज्ञान इंद्रियों के मिलने से जो कोश होता है उसे मनोमय कोश कहते हैं। इसे इच्छा शक्ति भी कहते हैं। मनोमय कोश की सहायता से ही आत्मा में इच्छा उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि मन का स्वरूप ही संकल्प विकल्प वाला है। और संकल्प विकल्प इच्छा रूप है। इस लिये आत्मा में इच्छा का होना मनोमय कोश की सहायता से होता है ॥ २३ ॥

(मूल) विज्ञानमयः कः ?। बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं मिलित्वा यो भवति स विज्ञानमयः कोशः ॥ २४ ॥

(अर्थ) विज्ञानमय कोश किस कहते हैं ?। बुद्धि और श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा और घ्राण रूप पांचो ज्ञान इन्द्रियों के मिलने से जो कोश उत्पन्न होता है, उसे विज्ञानमय कोश कहते हैं। इसका दूसरा नाम ज्ञान शक्ति भी है। क्योंकि बुद्धि और पांचों ज्ञान इन्द्रियों की ही सहायता से आत्मा को सब पदार्थों का ज्ञान होता है ॥ २४ ॥

(मूल) आनन्दमयः कः ? । एवमेव कारणशरीरभूताविद्यास्थमलीनसत्त्वं प्रियादिवृत्तिसहितं सदानन्दमयः कोशः । एतत्कोशपंचकम् । मदीयं शरीरं मदीयाः प्राणाः मदीयं मनश्च मदीया बुद्धिर्मदीयं ज्ञानमिति स्वेनैव ज्ञायते । तद्यथामदीयत्वेन ज्ञातं कटककुण्डलगृहादिकंस्वस्माद्भिन्नं, तथा पंचकोशादिकं मदीयत्वेन ज्ञातमात्मा न भवति ॥ २५ ॥

(अर्थ) आनन्द मय कोश किसे कहते हैं ? । इसी भांति कारण शरीर रूप अविद्या में रहने वाला, रज और तम गुण के संयोग से मलिन, और प्रिय तथा मोद आदि वृत्ति वाला जो कोश है उसे आनन्दमय कोश कहते हैं । इस कोशका आनन्दमय कोश नाम इसी कारण से हुआ है कि यह प्रिय और इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से मुदित और सुखित होता है । जब मोद और सुख होता है तो आनन्द

की मात्रा अधिक मालूम पड़ती है। बस यही कारण है कि इसे आनन्दमय कोश अर्थात् अधिक आनन्दवाली अवस्था कहते हैं। पहिले कहे गये पांचों कोश पञ्चकोश कहे जाते हैं। आत्मा स्वयं 'मेरा शरीर' 'मेरे प्राण' 'मेरा मन' 'मेरी बुद्धि' और 'मेरा ज्ञान' यह जानता है। यही ज्ञान आत्मा को शरीर आदि से भिन्न करता है। जैसे 'मेरा गृह' 'मेरा कंकण' और 'मेरा कुंडल' यह ज्ञान गृह आदि को ज्ञाता से भिन्न सिद्ध करता है, न कि वे स्वयं ज्ञाता बन जाते हैं, ऐसे ही 'मेरा शरीर' इत्यादि ज्ञान भी अपने को ज्ञाता से भिन्न सिद्ध करते हैं। यह सिद्धि 'मम' शब्द के प्रभाव से होती है। कोई भी कदापि ऐक्य होने पर मेरा शब्द नहीं कहता। जहां आप अलग रहकर केवल अपना सम्बन्ध जनाना रहता है, वहीं 'मेरा' शब्द बोला जाता है। 'मेरी पुस्तक' 'मेरी लेखनी' इत्यादि शब्दों का यही अर्थ है कि यह लेखनी मुझसे भिन्न है, परन्तु मेरा इसके साथ स्वामिपना का सम्बन्ध है। तस्मात् 'मम' शब्द के उच्चारण से जैसे कुण्डल आदि, उच्चारण करने वाले के सम्बन्धी समझे जाते

हैं, वैसेही 'मेरे पांचों कोश' इस प्रकार से ज्ञाता के सम्बन्ध वाले पञ्चकोश आत्मा नहीं हैं, किन्तु आत्मा उनसे भिन्न है। उनका साक्षी है, और पञ्च कोश माया के खिलवाड हैं यह वार्ता सिद्ध हो गई ॥ २५ ॥

(मूल) आत्मा तर्हि कः ? । सच्चिदानन्दस्वरूपः ॥ २६ ॥

(अर्थ) तब आत्मा किसे कहते हैं ? । जो सत् रूप चित रूप और आनन्द रूप है, उसे आत्मा कहते हैं ॥ २६ ॥

(मूल) सत्-किम् ?। कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति सत्। चित्-किम् ? ज्ञानस्वरूपः । आनन्दः कः ?। सुखस्वरूपः । एवं सच्चिदानन्दस्वरूपमात्मानं विजानीयात् २७

(अर्थ) सत् किसे कहते हैं ?। भूतकाल, भविष्य काल, और वर्त्तमान काल में जो बिगड़ता नहीं, किन्तु सदा एक रस रहता है, उसे सत् कहते हैं। चित् शब्द का क्या अर्थ है ? जो ज्ञान स्वरूप है उसे चित् कहते हैं। चित् शब्द का अर्थ है प्रकाश, और प्रकाश ज्ञान में रहता है। इससे

ज्ञान स्वरूप से जो सब का अनुभव करने वाला है, वही चित् शब्द का अर्थ है। आनन्द शब्द का क्या अर्थ है? जो सदा सुख रूप है वह आनन्द शब्द का अर्थ है अर्थात् जो कभी भी दुख से छुआ नहीं जाता वही कूटस्थ परब्रह्म नित्यानन्दरूप है, और उसेही दूसरे शब्द में सुख रूप कहते हैं। इस भांति आत्मा को सत्रूप, चित्रूप, और आनन्दरूप जाने। तात्पर्य यह है कि आत्मा को नित्य ज्ञानस्वरूप और कूटस्थ समझ कर जगत् को मिथ्या समझे।

(मूल) अथ चतुर्विंशतितत्त्वोत्पत्तिप्रकारं वक्ष्यामः॥ २८॥

(अर्थ) अब [मैं] माया से उत्पन्न होने वाले चौबीसों तत्त्वों की उत्पत्ति के उपाय को कहता हूं॥ २८॥

(मूल) ब्रह्माश्रया सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका माया अस्ति। तत आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोस्तेजः। तेजस आपः। अद्भ्यः पृथिवी॥ २९॥

(अर्थ) सत्त्वगुण रजगुण और तमगुण वाली, और परब्रह्म के आधार से रहने वाली माया है। अर्थात् जब सत्त्व रज और तम गुणों में किसी प्रकार की न्यूनता वा अधिकता नहीं जान पड़ती, किन्तु केवल समानता मालूम पडती है, उसी अवस्था का नाम माया है। सांख्यमत वाले इसेही मूलप्रकृति, अविकृति, प्रधान और स्वभाव आदि शब्दों से स्मरण करते हैं। इसी माया के सहायक ब्रह्म के प्रभाव से आकाश उत्पन्न होता है। आकाशसे वायु उत्पन्न होता है। वायु से तेज उत्पन्न होता है। तेज से जल उत्पन्न होता है। जल से पृथिवी उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि माया एक प्रकार की शक्ती है। जिसके संबंध भ्रम से परब्रह्म में एक प्रकार की कर्तृता जाग पड़ती है। वह कर्तृता संबंध भ्रम से जाग पडता है, इससे प्रथम २ आकाश उत्पन्न होता है। आकाश एक पोला पदार्थ है, इससे उसमें वायु उत्पन्न होजाता है। वायु और आकाश की परस्पर रगड से अग्निरूप तेज उत्पन्न होता है। अग्नि की उष्मा से वाष्परूप जल उत्पन्न होता है। जल के परस्पर की रगड से पृथिवी उत्पन्न होती है॥ २९॥

(मूल) एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्ये आकाशस्यां सात्त्विकांशाच्छ्रोत्रेन्द्रियं सम्भूतम् । वायोः सात्त्विकांशात्त्वगिन्द्रियं सम्भूतम् । अग्नेः सात्त्विकांशाच्चक्षुरिन्द्रियं सम्भूतम् । जलस्य सात्त्विकांशाद्रसनेन्द्रियं सम्भूतम् । पृथिव्याः सात्त्विकांशात् घ्राणेन्द्रियं सम्भूतम् । एतेषां पञ्चतत्त्वानां समष्टिसात्त्विकांशान्मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तान्तःकरणानि सम्भूतानि ॥ ३० ॥

(अर्थ) इन पांचो तत्त्वों में से आकाश के सत्त्वगुण के भाग से श्रवण (कान) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है । वायु के सत्त्वगुण के भाग से त्वक् (स्पर्श) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है । अग्नि के सत्त्वगुण के भाग से चक्षु (नेत्र) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है । जल के सत्त्वगुण के भाग से रसना (जिह्वा) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है । इन आकाश आदि

पांचो तत्त्वों के मिले हुए सत्त्वगुण के भाग से मन बुद्धि अहंकार और चित्तरूप चार अंतःकरण उत्पन्न हुआ है ३०

(मूल) सङ्कल्पाविकल्पात्मकं मनः । निश्चयात्मिका बुद्धिः । अहङ्कर्ता अहङ्कारः । चिन्तनकर्तृ चित्तम् । मनसो देवता चन्द्रमाः । बुद्धेर्ब्रह्मा । अहङ्कारस्य रुद्र । चित्तस्य वासुदेवः ॥ ३१ ॥

(अर्थ) चार प्रकार के अन्तःकरण में मन उसे कहते हैं, जिससे 'यह काम करूं वा न करूं' ऐसा सन्देह उत्पन्न होता है । 'यह कार्य अवश्य कर्तव्य है' यह ज्ञान जिससे होता है, उसे बुद्धि कहते हैं । 'मैंने यह कार्य किया' यह अहंकार रूप ज्ञान जिससे होता है, उसे अहंकार कहते हैं । संपूर्ण पदार्थों का जिसमें चिन्ता, व विचार होता है, उसे चित्त कहते हैं । यद्यपि अन्तःकरण एकही है, तो भी संकल्प विकल्प, निश्चय, अहंकार, और चिन्तन रूप कार्य के भिन्न २ होने से चार प्रकार का कहा जाता है । मन का देवता चन्द्रमा है । बुद्धि का देवता ब्रह्मा है । अहंकार

का देवता रुद्र [महादेव] है। चित्त का देवता वासुदेव [विष्णु] है ॥ ३१ ॥

(मूल) एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य राजसांशाद्वागिन्द्रियं सम्भूतम्। वायो राजसांशात्पाणेन्द्रियं सम्भूतम्। वन्हे राजसांशात्पादेन्द्रियं सम्भूतम्। जलस्य राजसांशादुपस्थेन्द्रियं सम्भूतम्। पृथिव्या राजसांशाद्गुदेन्द्रियं सम्भूतम्। एतेषां समष्टिराजसांशात्पञ्च प्राणाः सम्भूताः ॥ ३२ ॥

(अर्थ) इन पांचों तत्त्वों के मध्य में से आकाश के रजगुण भाग से वाक् (वाणी) इंद्रिय उत्पन्न हुई है। वायु के रजगुण भाग से पाणि (हाथ) इंद्रिय उत्पन्न हुई है। अग्नि के रजगुण के भाग से पाद (पैर) इंद्रिय उत्पन्न हुई है। जल के रजगुण के भाग से उपस्थ (पुरुष) इंद्रिय उत्पन्न हुई है। पृथिवी के रजगुण के

भाग से गुदा इंद्रिय उत्पन्न हुई है। इन आकाश आदि पांचों तत्त्वों के मिले हुए रजगुण के भाग से प्राण अपान व्यान समान और उदान नाम के पांच प्राण उत्पन्न हुए हैं ॥ ३२ ॥

(मूल) एतेषां पञ्चतत्त्वानां तामसांशात्पञ्चीकृतपञ्चभूतानि भवन्ति ॥ ३३ ॥

(अर्थ) आकाश आदि पांचों महाभूतों के तमगुण के भाग से पञ्चीकरण किये गये पांच तत्त्व उत्पन्न होते हैं। इस भांति चौबीस तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इन में आकाश आदि पांचों महाभूतों के सत्त्वगुण के भाग से पांच ज्ञान इंद्रिय और चार अंतःकरण उत्पन्न होते हैं। सब के योग से नव तत्त्व होते हैं। इसी प्रकार आकाश आदि पांचों के रजगुण के भाग से पांच कर्म इंद्रिय और पांच प्राण उत्पन्न होते हैं। जोडने से दस तत्त्व हुए। इसी भांति पांचों भूतों के तमगुण के भाग से पांच पञ्चीकृत तत्त्व उत्पन्न हुए। अब सबकी संख्या को जोडने से चौबीस संख्या हो जाती है ॥ ३३ ॥

(मूल) पञ्चीकरणं कथमितिचेत् ? । एतेषां पञ्चमहाभूतानां तामसांशस्वरूपं एकं एकं भूतं द्विधा विभज्य, एकैकमर्धं पृथक् तूष्णीं व्यवस्थाप्य, अपरमपरमर्धं चतुर्धा विभज्य स्वार्धमन्येष्वर्धेषु स्वभागचतुष्टयसंयोजनं कार्यम् । तदा पञ्चीकरणं भवति । एतेभ्यः पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतेभ्यः स्थूलशरीरं भवति। एवं पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं सम्भूतम ३४

(अर्थ) पंचीकरण किस प्रकार होता है ? । इसका उत्तर यह है कि इन पांचों महाभूतों के तमगुण रूप एक २ भूत भाग को दो २ भाग में बांट देना । इन बंटे हुए दोनों भागों में से एक २ भाग को चुपचाप अलग कर देना । बाकी के एक भाग को चार भागों में बांट देना। अब अलग रखे हुए अपने आधे भाग को इन भागों में मिला देना । यही पंचीकरण होता है । यदि कहोगे कि

इस प्रकार के मिलान से तो सब महाभूतों म सबका भाग आगया । अब ' यह पृथिवी है ' ' यह आकाश है ' यह भेद कैसे सिद्ध होवेगा ? तो इसका यह समाधान है कि, अवश्य एक २ में औरों का भाग आजाता है तब भी जिसमें जिसका भाग अधिक होता है उसका वही नाम होता है । जिसमें पृथिवी का भाग अधिक रहेगा और औरों का कम होगा वह पृथिवी । इसी प्रकार औरों में भी जानो । जैसे "पहलवानों का ग्राम" यह कहने से सुनने वाला समझता है कि "इस ग्राम में पहलवान अधिक हैं और दूसरे जाती के लोग कम हैं" वैसेही महाभूतों के विषय में समझना उचित है । इन पंचीकृत पांचभूतों से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है । इस प्रकार पिण्ड (स्थूल शरीर) और ब्रह्माण्ड की एकता सिद्ध होती है । ब्रह्माण्ड भी स्थूल शरीर के समान पंचीकृत पांच महाभूतों से उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥

(मूल) स्थूलशरीराभिनी जीवनामकं ब्रह्मप्रति-
बिम्बं भवति । स एव जीवः प्रकृत्य

स्वस्मात् ईश्वरं भिन्नत्वेन जानाति। अविद्योपाधिः सन्नात्मा जीव इत्युच्यते ॥ ३५ ॥

(अर्थ) स्थूल शरीर का अभिमान करनेवाला अर्थात् उसे अपना समझनेवाला ब्रह्म का प्रतिबिंब जीव कहलाता है। वह अपने स्वभाव के अनुसार ईश्वर को अपने रूप से भिन्न समझता है। अविद्या के संयोग से आत्मा जीव कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जीव वस्तुतः ब्रह्म ही है, परन्तु वह जब स्थूल शरीर में अभिमान करता है तब दर्पण के प्रतिबिम्ब के समान वह जीव समझा जाता है। प्रतिबिम्ब होने में कारण अज्ञान है। जैसे थाली भरे हुए जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब (परछाहीं) देख कर लोग उसे तब तक आकाश में रहनेवाले सूर्य से अलग समझते हैं जबतक थाली हटा ली नहीं जाती। परन्तु थाली के हटाते ही प्रतिबिम्ब का दर्शन नहीं होता केवल सूर्य रह जाता है वैसे ही स्थूल शरीर के अभिमान के नाश हो जाने पर जीव नाम नहीं रहता। तब इस

अज्ञान का कारण अज्ञान ही है। इसी से जीवाभिमानी आत्मा ईश्वर को दूसरा समझता है। और अज्ञान से भये कार्य को अपना कार्य समझकर उनके शुभ और अशुभ फलों को भोगता है। तात्पर्य यह कि अविद्या से घिरा हुआ आत्माही जीव है। वह और कोई नहीं है। जब अविद्या का नाश हो जाता है अर्थात् जब ज्ञान उत्पन्न होजाता है तब वही अपने को ब्रह्म २ कहने लगता है। जैसे कोई पुरुष अपने गले में पड़े हार को अज्ञान से खोया हुआ समझकर उसे ढंढता फिरता है, परंतु जब उसका हाथ अपने गले पर फिरजाता है तब वह चुपचाप अपनी राह लगजाता है, किसी से कुछ नहीं कहता, वैसे ही जीव भी ज्ञान होने पर अपने स्वरूप को देखने लगजाता है। इसी स्वरूप दर्शन को ब्रह्मप्राप्ति कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि माया और अविद्याही स्थूल शरीर के अभिमान में, आत्मा के जीवरूप प्रतिबिम्ब होने में, और ब्रह्म को जीव नाम धरने में कारण हैं। माया और अविद्या का भेद इतनाही है कि सत्त्वगुण की अधिकता

माया नाम है और रज वा तम गुण की अधिकता में अविद्या नाम है ॥ ३५ ॥

(मूल) मायोपाधिः सन्नीश्वर इत्युच्यते। एवमुपाधि भेदाज्जीवेश्वरभेददृष्टिर्यावत्पर्यन्तं तिष्ठति तावत्पर्यन्तं जन्ममरणादिरूपसंसारो न निवर्तते। तस्मात् कारणान्न जीवेश्वरयोर्भेदबुद्धिः स्वीकार्या ॥ ३६ ॥

(अर्थ) माया में जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, उसे ईश्वर कहते हैं। इसेही नैयायिक लोग जगत् का कर्ता अर्थात् निमित्त कारण कहते हैं। इस प्रकार अविद्या और माया रूप धर्म के भेद से जबतक अविद्या में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को जीव, और माया में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को ईश्वर कहा करते हैं तबतक संसार से छुटकारा नहीं होता। संसार का अर्थ है बार बार जन्मना और मरना। और वह तबतक बराबर बना रहता है जबतक भेदबुद्धि नहीं छूटती। इस लिये जीव और ईश्वर को भिन्न नहीं समझना, किन्तु

उन दोनों के भेद को मिथ्या समझकर एकता बुद्धि करनी ॥ ३६ ॥

(मूल) ननु साहङ्कारस्य किञ्चिज्ज्ञस्यजीवस्य, निरहङ्कारस्य सर्वज्ञेश्वरस्य "तत्त्वमसीति" महावाक्यात्कथमभेदबुद्धिः स्यादुभयोर्विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात ? ॥३७॥

(अर्थ) यहां यह शंका होती है कि जीव का स्वरूप अहंकारी और अल्पज्ञ है, और ईश्वर का स्वरूप निरहंकारी और सर्वज्ञ है। इन दोनों की एकता 'तत्त्वमसि' 'तूं वही है' इस महा वाक्य से कैसे होवेगी। क्योंकि ये दोनों भिन्न २ धर्म वाले हैं ? जो २ भिन्न धर्मवाले होते हैं उनकी एकता कभी नहीं होती। जैसे अग्नि और जल की एकता नहीं होती ॥ ३७ ॥

(मूल) इति चेन्न। स्थूल सूक्ष्मशरीराभिमानी त्वं पदवाच्यार्थ उपाधिदशाविनिर्मुक्तं समाधिदशासम्पन्नं शुद्ध चैतन्यं त्वं पदलक्ष्यार्थः ॥ ३८ ॥

(अर्थ) इस शंका का यह समाधान है कि, स्थूल और सूक्ष्म शरीर का जो अभिमानी है वह त्वं शब्द का वाच्य अर्थ है, और माया तथा अविद्या धर्म से रहित और समाधि अवस्थावाला शुद्ध चतन्य त्वं शब्द का लक्ष्य अर्थ है। अब विचारना चाहिये कि त्वं शब्द का ही दोनों अर्थ हुआ। एक वाच्य अर्थ और दूसरा लक्ष्य अर्थ। वाच्य और लक्ष्य दो नहीं होते। जैसे घट शब्द का वाच्य अर्थ घड़ा है और लक्ष्य अर्थ मृत्तिका है। दोनों एकही हैं, जो घडा है वही मृत्तिका है। और जो मृत्तिका है वही घडा है। ऐसेही तत् शब्द का भी वाच्य अर्थ माया और अविद्या वाला जीव है, और लक्ष्य अर्थ शुद्ध ब्रह्म है। अब हमे 'तत्त्वमसि' इस वाक्य की ओर देखना चाहिये कि इसका क्या अर्थ है ? इसके विचार से हमे यह जान पडता है कि 'जो सर्वज्ञ ईश्वर है वही तू है'। इस अर्थ के देखने से हमे यह स्वीकार करना पडता है कि जीव ब्रह्म की एकता जानने के समय दोनों में कोई धर्म का ज्ञान बाकी नहीं रहता इस से कोई शंका नहीं बच जाती ॥ ३८ ॥

(मूल) एवं सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वरस्तत्पद-
वाच्यार्थः । उपाधिशून्यंशुद्धचैतन्यं
तत्पदलक्ष्यार्थः । एवं च जीवेश्वरयो-
श्चैतन्यरूपेणाभेदे बाधकाभावः॥ ३९॥

(अर्थ) इस भांति सर्वज्ञता आदि धर्मवाला ईश्वर तत् शब्द का वाच्य अर्थ है, और सर्वज्ञत्व आदि धर्म के विना जो शुद्ध चैतन्य है वह तत् शब्द का लक्ष्य अर्थ है। इस प्रकार धर्मवाले ईश्वर से भेद रहने पर भी चैतन्य रूप से जीव और ईश्वर की एकता में कोई दोष नहीं आता। क्योंकि धर्म को अलग करदेने में दोनों ओर चैतन्य मात्र रहता है जो स्वभावसे ही एक है ॥ ३९ ॥

(मूल) एवं च वेदान्तवाक्यैः सद्गुरूपदेशेन
च सर्वेष्वपि भूतेषु येषां ब्रह्मबुद्धिरुत्प-
न्ना ते जीवन्मुक्ता इत्यर्थः ॥ ४० ॥

(अर्थ) इस प्रकार 'तू वही है' 'म ब्रह्म हूं' इत्यादि वेदान्त के महावाक्यों से, और सद्गुरु के उपदेश से

जिनको सब प्राणियों में ब्रह्म ज्ञान हो गया है वही जीवन्मुक्त है। आशय यह है कि जीवन्मुक्त वही महापुरुष है जिसे ब्राह्मण गौ हाथी कुत्ता और श्वपाक में अपना ही स्वरूप दिखाता है। इस समय न तो उसे स्पर्शास्पर्श का विचार होता है, न वह ब्राह्मण को पवित्र और कुत्ते को अपवित्र समझता है, न उसे किसी वस्तु के लाभ से हर्ष होता है, न किसी के नष्ट होने से दुःख होता है, और न वह अपने और पराये में कुछ अन्तर समझता है। वह इस समय जनक के समान कह देता है कि 'यदि सब मिथिलापुरी ही भस्म हो जावे तो भी मेरा कुछ नहीं भस्म होगा'। तात्पर्य यह कि वह सब द्वंद्वों से छूट जाता है ॥ ४० ॥

(मूल) ननु जीवन्मुक्तः कः ? । यथा देहोऽहं पुरुषोऽहं ब्राम्हणोऽहं शूद्रोऽहमस्मीति दृढनिश्चयस्तथा नाहं ब्राह्मणो न शूद्रो न पुरुषः किन्त्वसङ्गः सच्चिदानन्दस्वरूपः प्रकाशरूपः सर्वान्तर्यामी

चिदाकाशरूपोऽस्मीति दृढनिश्चयरूपापरोक्षज्ञानवान् जीवन्मुक्तः ॥ ४१ ॥

(अर्थ) जीवन्मुक्त किसे कहते हैं ?। जैसे 'मैं देह हूं' 'मैं पुरुष हूं' 'मैं ब्राह्मण हूं' और 'मैं शूद्र हूं' यह दृढ निश्चय है, इसी भांति 'न मैं ब्राह्मण हूं' 'न शूद्र हूं' और 'न पुरुष हूं' किन्तु मैं किसी से सङ्ग न रखने वाला, सत् चित् और आनन्दस्वरूप वाला, प्रकाशस्वरूप वाला, सब जीवों का अन्तर्यामी, और चित् आकाश स्वरूप हूं यह दृढ ज्ञान का प्रत्यक्ष जिसे होता है वही जीवन्मुक्त है ॥ ४१ ॥

(मूल)' ब्रह्मैवाहमस्मि इत्यपरोक्षज्ञानेन निखिलकर्मबन्धविनिर्मुक्तःस्यात् ॥ ४२ ॥

(अर्थ) 'मैं ब्रह्मही हूँ' इस प्रत्यक्ष ज्ञान के हो जाने से सब प्रकार के कर्मों के बन्धनों से छूट जाता है ॥ ४२ ॥

(मूल) कर्माणि कति विधानि सन्ति ? इति चेत् । आगामि—सञ्चितप्रारब्धभेदेन त्रिविधानि सन्ति ॥ ४३ ॥

(अर्थ) कर्म कै प्रकार के हैं ?। इसका उत्तर यह है कि, कर्म तीन प्रकार के हैं। प्रथम आगामि कर्म, द्वितीय संचित कर्म, और तृतीय प्रारब्ध कर्म है ॥ ४३ ॥

(मूल) ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं ज्ञानिदेहकृतंपुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति तदागामीत्यभिधीयते ॥ ४४ ॥

(अर्थ) ज्ञान हो जाने के बाद ज्ञानी के शरीर से किया गया जो पुण्य और पाप कर्म है वह आगामि कर्म कहा जाता है ॥ ४४ ॥

(मूल) सञ्चितं कर्म किम् ?। अनन्तकोटिजन्मनां बीजभूतं सत् यत्कर्मजातं पूर्वार्जितं तिष्ठति तत्सञ्चितं ज्ञेयम् ॥ ४५ ॥

(अर्थ) सञ्चित कर्म किसे कहते हैं ? अनेक करोड जन्मों का जो बीज अर्थात् मुख्य कारण है, और जो अनेक जन्मों से बटोरा गया है उसे सञ्चित कर्म कहते हैं।४५।

(मूल) प्रारब्धकर्म किमिति ? चेत्। इदं शरीरमुत्पाद्य इह लोके एवं सुखदुःखादि

प्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं, भोगेन नष्टं भवति । प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति ॥ ४६ ॥

(अर्थ) प्रारब्ध कर्म किसे कहते हैं ?। जो कर्म इस शरीर को उत्पन्न करता है, और इस लोक में अनेक प्रकार के सुख और दुःख देता है उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। प्रारब्ध कर्म का हैं भोग करने से ही नाश होता है। क्योंकि कहा है कि 'प्रारब्ध कर्मों का भोगने से ही क्षय होता है'। वस्तुतः तो ज्ञान होने पर उसका भी नाश हो जाता।४६।

(मूल) साञ्चितं कर्म ब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चयात्मकज्ञानेन नश्यति। आगामि कर्मापिज्ञानेननश्यति । किञ्चागामिकर्मणां नलिनीदलगतजलवत् ज्ञानिना सम्बन्धो नास्ति ॥ ४७ ॥

(अर्थ) 'मैं ब्रह्म ही हूं' इस दृढ ज्ञान से सञ्चित कर्म नष्ट हो जाता है। आगामि कर्म भी इसी ज्ञान से

नष्ट हो जाता है। और आगामि कर्म का ज्ञानी के साथ उसी प्रकार संबंध नहीं होता जैसे कमल के पत्ते से जल का संबंध नहीं रहता ॥ ४७ ॥

(मूल) किञ्च ये ज्ञानिनं स्तुवन्ति भजन्ति अर्चयन्ति तान्प्रति ज्ञानिकृतमागामि पुण्यं गच्छति। ये ज्ञानिनं निन्दन्ति द्विषन्ति दुःखप्रदानं कुर्वन्ति तान्प्रति ज्ञानिकृतं सर्वमागामिक्रियमाणं यदवाच्यं कर्म पापात्मकं तद्गच्छति ॥ ४८ ॥

(अर्थ) और भी जो लोग ज्ञानी की स्तुति करते हैं, सेवा करते हैं और पूजा करते हैं, ज्ञानी का किया हुआ आगामी पुण्य उन्हें मिलता है। जो लोग ज्ञानी की निन्दना करते हैं, उनसे बैर करते हैं, और उन्हें दुःख देते हैं, ज्ञानी का किया हुआ सब आगामी पाप उन्हें मिलता है ॥ ४८ ॥

(मूल) तथा चात्मवित्संसारं तीर्त्वा ब्रह्मानन्दमिहैव प्राप्नोति। तरति शोकमात्मविदिति श्रुतेः ॥ ४९ ॥

(अर्थ) इस प्रकार आत्मज्ञानी संसार सागर से पार होकर इसी जन्म में ब्रह्मानंद को पाता है। क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी शोक समुद्र को पार कर जाता है यह श्रुति में लिखा है।४९।

(मूल) तनुं त्यजतु वा काश्यांश्वपचस्य गृहे ऽथ वा। ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तो ऽसौ विगताशयः ॥ इति स्मृतेश्च ॥५०॥

(अर्थ) चाहे काशी में शरीर पात होवे, अथवा चांडाल के घर में शरीर पात होवे, ज्ञान की प्राप्ति होतेही अन्तःकरण के मलों से शुद्ध होकर ज्ञानी मुक्त हो जाता है।५०।

इति तत्त्वबोधप्रकरण

समाप्तम् ॥

Printed by Thakur Das Manager, Tara Printing Works, Benares,

अथ

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितः

आत्मबोधः ।

माधवानन्दप्रणीतहिंदुस्थानीभाषाटीकासमेतः ।

तृतीयावृत्तिः ।

स च

मुम्बापुर्यां

जावजी दादाजी इत्येतेषां 'निर्णयसागरा' ख्यमुद्रा-
यंत्रे तदधिपतिभिः **तुकाराम जावजी** इत्येतैः
मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतः ।

शकाब्दाः १८१९ संवत् १९५४.

आत्मबोधकी प्रस्तावना.

यह आत्मबोधनामक वेदांतप्रकरण श्रीमद्भगवच्छंकराचार्यनें मुमुक्षु पुरुषोंके उपकारार्थ अनेक प्रकारकी श्रुतिस्मृतियोंका सार लेकर आत्मस्वरूपका विचार अति सुगमतातें रचा. तिसके ऊपर अनेक विद्वानोंनें संस्कृत टीका भी बनाई, परंतु जो भाषावाले जिज्ञासु पुरुष हैं, तिनके समझनेमें संस्कृत टीका आती नहीं. काहेतें, की वेदांतप्रकरण अति बारीक है, और वे बिचारे श्रद्धाकरिके बहुत परिश्रम भी करते हैं, परंतु साक्षी आत्माका अति कठिनतातें बोध होता है; तौ भी तिनके मनमें चिंता बनी रहती है. इस कारणतें शुद्ध अधिकारी और आत्मस्वरूपके जाननेकी अति उत्कृष्ट है इच्छा जिनकों और संसारकूपकों कारागारवत् तुच्छ मानने, तिसके भोगनके त्यागनकों यत्नपूर्वक उपायभी बहुत करते रहते हैं; परंतु प्रारब्धकी प्रबलतातें यत्न निष्फल हो जाते हैं, ऐसे

श्रीमद्वैश्यवंशभूषण भीषमचंद सेठ वासस्थान बोदर अति श्रद्धाभक्तिपूर्वक हमारेप्रति निवेदन करा, की आप हमारे अर्थ आत्मबोधप्रकरणकी भाषाटीका कृपा करिके जगत्के उपकारार्थ बना देवै तौ बहुत अच्छा है, तब हमनें अति सरल और तात्पर्यरूप अर्थ प्रकाश करा है, जिसमें हरएकके समझनेमें भली प्रकारतें आवै तौ जो कोई पुरुष इस टीकाकों विचार करैंगे सो निःसंदेह परमपदकों प्राप्त होवैंगे. फेरि संसारके जन्ममरण इत्यादिक जो क्लेश हैं सो भली प्रकारतें निवृत्त होवैंगे. काहेतें, आत्मस्वरूपके यथार्थज्ञानविना संसार समाप्त होता नहीं, यह सर्व विद्वानोंका अनुभव है. तातें उत्तम पुरुषोंकों यही योग्य है, की आत्मस्वरूपके जाननेकी इच्छानिमित्त प्रबल करै, और श्रद्धाभक्तिपूर्वक इस आत्मबोध प्रकरणकों भाषाटीकासमेत नित्य विचार करै, और लेखक लोग इस हिंदुस्थानी वानीकों बदलै नहीं यह हमारी उनतें प्रार्थना है इति ॥

॥ श्री ॥

माधवानन्दप्रणीतभाषाटीकासहित

आत्मबोधः ।



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथात्मबोधप्रकरणकी भाषाटीका लिख्यते ॥ मनहरन छन्द ॥ उदधि अपार मम रूपतें, तरंगतुल्य विधि हरि हर, आदि जे ते रूपधारी हैं। देव दैत्य पन्नग पिशाच चराचर, जे ते जहँलग जगजाल मायानें पसारी है॥ सबकों आधार आप निराधार, आतमसों सत् चित् आनंदस्वरूपतें सो न्यारी है। साक्षी एक समरस व्यापक, आकाशवत् पूरनप्रकाश, ताकों वंदना हमारी है ॥ १ ॥ जामें उदै अस्त नाहिं, व्यस्तहुं स- त नाहीं, वानीका प्रवेश नाहीं, नाहीं कछु जो ही। जीव ईश भेद नाहीं, कोई प्रतिषेध नाहीं, ग्रंशकृत क्लेश नाहीं, कौन विधिमें गहो॥ वेदहुँ पु- सि नाहीं, लक्ष्य औ अलक्ष्य नाहीं, आतम कू-

टस्थ एकरूप सदा रमि रहौ । द्वैतहूंको लेश नाहीं, अहं त्वहं भेद नाहीं, गुरु उपदेश नाहीं, तातें चुप व्है रहौं ॥ २ ॥ ऐसो चिदानंदब्रह्म, मायाकों संयोग पाई, भूलिके स्वरूपकों सो जीव नाम धारै है । क्षीरनीरभेदवत् एकरूप भासत है, दुस्तर सो भेद जहां, सूरी पचिहारे हैं ॥ जाकों श्रीशंकरानंदगुरु भिन्नभिन्न करि जगउपकार, लगि वहु ग्रंथ सारे हैं । श्रुतीको प्रमाण जहां, भासै करामलक सो आत्मविचार आत्मबोध नाम चारे हैं ॥ कठिण विचार जाकों संस्कृत वानीमांहि भाषामें प्रकाश कीन सरल सुधारे हैं ॥ ३ ॥ दोहा ॥ वैश्यवंशअवतंस अतिपावन परमप्रकाश ॥ विमल विवेक विचार दृढ चिदानन्दरसवास ॥४॥ गुरुसेवारत चित्त नित धर्मनिपुन गुनधाम ॥ सदा तीव्र वैराग जिहिं भीष्म... न्द सो नाम ॥ ५ ॥ ताके हितके हेत यह भ... विभाष्य नवीन ॥ करी यथामति प्रीतिजुत चिदानं... नीसलीन ॥ ६ ॥ जो याकों नित प्रीतियुत पढै ... ॥

नर कोई ॥ भववारिधिके दुःखसों तुरतहि पार सो होई ॥ ७ ॥

अथ वार्तिक ॥ परमदयावान् भगवान् जो हैं श्रीशंकराचार्य, सो उत्तम अधिकारियोंके अर्थ वेदपयोनिधि मथिकर ज्ञानरूपी रत्न निकासिके उपनिषत्, सूत्र औ गीता ये तीनि प्रस्थान जो हैं ध्येयब्रह्मके निरनै, अर्थात् जीवब्रह्मकी एकता; ताके सिद्धि करनेवाले तिनके विचार करनेकों जो समर्थ नहीं, ऐसे मंदबुद्धि मुमुक्षु पुरुषनके ऊपर अनुग्रहके अर्थ सर्व वेदांतसारसंग्रह यह परम रत्नरूप आत्मबोधप्रकरणनाम ग्रंथ करते भये हैं.

ॐ तपोभिः क्षीणपापानां शांतानां वीतरागिणाम् ॥ मुमुक्षूणामपेक्षोऽयमात्मबोधो विधीयते ॥ १ ॥

ग्रा यथा

सिद्धि होरिति ॥ तप कहे कृच्छ्रचांद्रायण, नि-

त्य, नैमित्तिक, उपासना आदि अनुष्ठानरूप त- पकरिके क्षीण भये हैं पाप जिनके, अथवा चक्षु आदि इंद्रियनिग्रहरूप तपकरिके क्षीण भये हैं पाप ज़िनके; तात्पर्य यह—रागद्वेषादि अंतःकर- णके दोष दूर भये हैं जिन पुरुषनके, और 'शां- तानां' कहे छोभरहित; वीतराग कहे इस लोक और परलोकके भोगनविषे इच्छारहित; मुमुक्षु कहिये जन्म, जरा, मरण, संसाररूपी ग्रंथि छेदन करनेकी अभिलाषावाले ऐसे जो हैं मुमुक्षु, ति- न पुरुषनके हितके अर्थ यह आत्मबोधप्रकरण अभिधीयते कहे कहते हैं ॥ १ ॥

शंका—तपस्या और मंत्रनका जप और य- ज्ञादिक कर्म और जोग आदि अनेक प्रकारके साधन करिके मोक्षका बोधन, अर्थात् सिद्धि क- हा है. तुम मोक्षका साधन आत्माका ज्ञान कैसे कहते हौ ?

उत्तर—आत्मा अर्थात् अपने स्वरू[illegible] पढै ॥

बोध है, सोई साक्षात् मोक्षका कारण है; ऐसे श्रुतिप्रमाण सिद्धि है; और कर्म, उपासना शुद्धि-का कारण है, मोक्षका नहीं. इसतें हम आत्मबो-धकों मोक्षका साधन कहते हैं. तिसका दृष्टांतः—

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मो-
क्षैकसाधनम् ॥ पाकस्य वह्निवज्ज्ञा-
नं विना मोक्षो न सिद्ध्यति ॥ २ ॥

बोध इति ॥ तप, मंत्र और कर्मयोगादिक जो नानाप्रकारके कर्म हैं, सो चित्तकी शुद्धि और एकाग्रताके अर्थ हैं; और परंपरा करिके आत्मज्ञानके विना मोक्षकी सिद्धि होती नहीं. तातें, मोक्षका साधन आत्माका बोध है, कर्म न-हीं. दृष्टांत—पाकस्येति ॥ जैसे लोकविषे काष्ठ, ज-ल, अन्नादिक भोजनसिद्धके अर्थ संपूर्ण साम-ग्री यथार्थ इकट्ठी है परंतु अग्निविना भोजनकी सिद्धि होती नहीं, तैसे अनेकप्रकारके जो हैं कर्म

और उपासना सो कोटिन जन्म करता रहै, परंतु ज्ञानविना मोक्ष होती नहीं॥ तथा च श्रुतिः॥ "ज्ञानादेव तु कैवल्यं। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः" इति श्रुतेः॥ इसका अर्थ ज्ञानहीतें मुक्ति होती है, और ज्ञानतें रहितकों मुक्ति नहीं; और आत्मादेवकों जाननेसें सर्व पाशनकी हानि होती है. तात्पर्य यह, संपूर्ण बंधनोंतें छूटिके पुरुष परमपदकों प्राप्त होता है, ऐसे श्रुति भी ज्ञानविना मोक्षकों उपासनाकर्मतें निषेध करती है.

शंका–कर्मनकी भी विचित्र शक्ति है, और जनकादिक कर्महीद्वारा संसिद्धिकों प्राप्त भये हैं; तातें, कर्मनतेंही अज्ञानका नाश होकर मुक्ति होती है; तुम ज्ञानतें अज्ञानका नाश कैसे कहते हो?

उत्तर–जो जिसका विरोधी नहीं होता, सो तिसके नाश करनेमें भी समर्थ नहीं होता; और संसिद्धिशब्दका अर्थ अंतःकरणकी शुद्धिपरता है, मोक्षका कारण नहीं.

अविरोधितया कर्म नाविद्या वि-
निवर्तयेत् ॥ विद्याऽविद्यां निह-
न्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥ ३ ॥

अविरोधितयेति ॥ कर्म और अज्ञानका अविरोध है, अर्थ यह—कर्म और अज्ञानका परस्पर विरोध नहीं; काहेतें की, दोऊ जड हैं; इस कारणतें कर्म अविद्या कहे, अज्ञानकी निवृत्ति करनेकों समर्थ नहीं; तातें मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वरूप ब्रह्म हूं; इस प्रकारकी विद्या कहे ब्रह्म और आत्माकी एकताका ज्ञान; सो मैं मनुष्य हूं, दुःखी हूं, सुखी हूं, मूर्ख हूं ऐसा जो है अविद्या कहे अज्ञान तिसका नाश करनेकों समर्थ है. तेज इति ॥ जैसे तेज जो है सूर्यादिकनका प्रकाश सो तिमिर कहे अंधकारकों शीघ्रही नाश करता है, तैसे आत्मज्ञानके प्रकाश होतेही संपूर्ण अज्ञानका नाश होजाता है ३

शंका—प्रतिशरीरमें आत्मा परिच्छिन्न कहे

नाशमान् अर्थात् जन्मतेमें मरा हुवा प्र रहै, परंतु है, तौ जीवब्रह्मकी एकताके ज्ञानतें अज्ञानकी निवृत्ति कैसी बनती है?

उत्तर—अज्ञानकरिके आत्मा परिच्छिन्नवत् प्रतीत होता है, तिस अज्ञानके नाश होनेतें अपरिच्छिन्नवत् आपही प्रकाशमान् होता है यह कहते हैं.

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः ॥ स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ४ ॥

परिच्छिन्न इति ॥ सर्वत्र परिपूर्ण अद्वितीय आत्मा अज्ञानकल्पित देवमनुष्यादि उंचनीच शरीरके अध्यास, अर्थात् भ्रमकरिके परिच्छिन्नवत् प्रतीत होता; सो जब "तत्त्वमसि" इत्यादि श्रुतिके महावाक्यनद्वारा जब आत्मा और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान होता हैं, तब अज्ञानतें जो मिथ्या अध्यासका आरोप है तिसका नाश होनेतें आ-

साके बल कहे सजातीय विजातीय स्वगतभेदतें रहित स्वप्रकाश प्रतीत होता है. ताका दृष्टांत–मेघापायेति ॥ मेघकृत जो है आवरण, तिसके नाश होनेतें जैसे सूर्य आपही प्रकाशमान् होता है, तैसे अज्ञानके नाश होनेतें आत्मा आपही प्रकाशमान् होता है ॥ ४ ॥

शंका–अज्ञानके नाशतें आत्माकी केवलताका जो तुम प्रतिपादन करते हो सो नहीं संभवता. काहेतें की, अज्ञानके नाश करनेवाली वृत्ति ज्ञानकरिके द्वैतकी प्राप्ति होती है.

उत्तर–अज्ञानकरिके जीव मलिन है वास्तव आत्मा शुद्ध है यह कहते हैं.

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासा-
द्वि निर्मलम् ॥ कृत्वा ज्ञानं स्वयं
नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥ ५ ॥

अज्ञानेति ॥ अकर्त्ता, अभोक्ता जो है सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा ब्रह्म, सो अज्ञानकरिके मैं कर्त्ता हुं, मैं भोक्ता हुं, मैं जीव हुं ऐसे भ्रमकरिके अपनेकों मानता है; तातें, कलुष कहे मलिन हो गया है; सो मैं अकर्त्ता, अभोक्ता, सच्चिदानन्द, कूटस्थ, असंग साक्षी ब्रह्म हुं, ऐसे ज्ञानकरिके अपने स्वरूपका जब बहुतकाल अभ्यास करता है तब आपही निर्मल कहे अज्ञानरूपी मायामलतें रहित अपने स्वरूपविषे स्थित होता है. जैसे कतकरेणु जो है निर्मली बूटि सो जलकों निर्मल करि देती है; तैसे ज्ञान आत्माकों आपही निर्मल करि देता है ॥ ५ ॥

शंका—अपरोक्ष साक्षात् जो प्रतीत होता है संसार, सो भी सत्य है; तुम आत्माकी केवलता कहे अद्वैतता कैसे कहते हो ?

उत्तर—मिथ्या जगत्करिके आत्माकी अद्वै-

तताकी हानि नहीं होती, सो स्वप्नके दृष्टांतसें संसारके मिथ्यापनेकों सिद्ध करते हैं.

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ॥ स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यवद्भवेत् ॥ ६ ॥

संसार इति ॥ रागद्वेषादि करिके प्राप्त यह संसार स्वप्नके तुल्य मिथ्या है, जैसे स्वप्नके पदार्थ निद्रासमयमें सत्यवत् प्रतीत होते हैं, और प्रबोध कहे जाग्रत् अवस्थाविषे आपही असत्य हो जाते हैं, तैसे यह संसार अज्ञानकालमें सत्यवत् प्रतीत होता है; और प्रबोध कहे आत्मा और ब्रह्मकी एकताके ज्ञानकरिके संसार आपही मिथ्या हो जाता है. तातें संसारकरिके आत्माकी अद्वैतताकी हानि नहीं होती ॥ ६ ॥

जगत्कों अधिष्ठान कूटस्थ साक्षी आत्माका जबतक ज्ञान अर्थात् जानते नहीं, तबतक कल्पित जगत् सत्यवत् प्रतीत होता है.

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ॥ यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥ ७ ॥

तावदिति ॥ जबतक नीलपृष्ठ त्रिकोणादियुक्त सीपाका रूप यथार्थ नहीं जाना जाता, तबतक कल्पित रजत कहे चांदी सत्यवत् प्रतीत होती है; तैसे सच्चिदानंद अद्वैतब्रह्मका स्वरूप जबतक यथार्थ नहीं जानते. तात्पर्य यह, जबतक साक्षात्कार नहीं अनुभव होता, तबतक मिथ्याभूत प्रपंच भ्रम करिके सत्यवत् प्रतीत होता है॥७॥

तातें संपूर्ण प्रपंच ब्रह्मविषे कल्पित है, तिसकों दृष्टांतकरिके दृढ करते हैं.

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ॥ व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८ ॥

सच्चिदिति ॥ अस्तिभातिप्रियरूप आत्मा

विषे और नामरूपात्मक जगत्विषे, अनुस्यूत क-हे जैसे मणकोंविषे सूत्र, और सूत्रविषे मणके ऐसे परस्पर ओतप्रोत कहे व्यापक हैं और नि-त्य कहे तीनि कालविषे बाधरहित विष्णु कहे च-राचरमें व्यापक और सर्वका उपादानभूत ब्रह्म तिसविषे, 'व्यक्तयः' कहे नानाप्रकारकी देव, मनुष्य, पशु, कीट, पतंग आदिकी मूर्त्ति नामरूप जगत् मिथ्या मायानें कल्पे हैं; जैसे हाटक कहे सुवर्ण तिसविषे कटक कुण्डलादिक मिथ्या नाम-रूप कल्पे हैं. तातें, वाचारंभणमात्रही ब्रह्मविषे जगत्की मिथ्या कल्पना है, वास्तव जगत् अ-र्थात् नामरूप विकाररहित आत्मा शुद्ध है॥ ८॥

शंका—प्रपंचका मिथ्यपना भी है, और जीवभेद सत्य है, तौ प्रपंचके अधिष्ठानरूप परमा-त्माकों तुम अद्वितीय कैसे कहते हौ ?

उत्तर—उपाधिकरिके आत्माविषे भेद प्रतीत

होता है, वास्तव आत्मा अद्वितीय है और भेद कल्पित है.

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपा-
धिगतो विभुः ॥ तद्भेदाद्भिन्नव-
द्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥ ९ ॥

यथाकाश इति ॥ जैसे व्यापक आकाश घटमठआदि नामरूप उपाधिनमें प्राप्त होयकर तिन उपाधियोंके भेदकरिके घटाकाश मठाकाशवत् आकाशकी प्रतीति होती है, तैसे व्यापक ब्रह्म हृषीकेश कहे सर्व इंद्रिय अंतःकरणादिरूप उपाधिनमें ढका हुवा. तात्पर्य यह, अंतःकरणविषे प्रतिबिंबभावकों प्राप्त तिसकरिके आत्माविषे भेद, अर्थात् भिन्नवत् प्रतीत होता है, तिन उपाधिनके नाश होनेतें आत्मा एक अद्वैत प्रतीत होता है. तात्पर्य यह, असंग अद्वितीय आत्माविषे वास्त-

भेद कोई है नहीं. उपाधिकरिके जीव ईश्वरभेद भिन्नवत् प्रतीत होता है; जैसे घट मठ उपाधिनके नाश होनेतें आकाश एकवत् प्रतीत होता है ॥९॥

शंका—मैं ब्राह्मण हूं, मैं ब्रह्मचारी हूं, मैं संन्यासी हूं, इस प्रकार जाति, वर्ण, आश्रम आदि नानाप्रकारके धर्मयुक्त आत्मा प्रतीत होता है, तो असंग कैसे कहते हौ ?

उत्तर—जाति, वर्ण, आश्रम आदि धर्म असंग आत्माविषे कल्पित हैं, वास्तव हैं नहीं.

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः ॥ आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥ १० ॥

नानोपाधीति ॥ प्रथम कही हुई उपाधियोंकी तरह देह आदि अनेक उपाधिनकरिके आत्मा और देहकी एकरूपताके अध्यास, अर्थात् भ्रमकरिके तिसे देहके जो हैं धर्म, जाति, आश्रम

आदिक मिथ्या, सो आत्माविषे आरोप किया है, सो अविद्या अर्थात् अज्ञानकल्पित है, वास्तव कछु भी सत्य नहीं. जैसे स्वभावकरके जल मधुर और शुभ्र है; परंतु जैसे जैसे कटु कषाय लवणादिक रक्त, पीत, श्याम रंग मिलाया, तैसे तैसे जल प्रतीत होता है. तैसे जाति, वर्ण, आश्रमके साथ मिलिकर आत्मा जाति वर्ण आश्रम प्रतीत होता है, स्वाभाविक कछु भी आत्माविषे है नहीं ॥ १० ॥

अब अविद्याकल्पित जो तीनि उपाधि हैं तिनका स्वरूप कहते हैं.

पंचीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसंचितम् ॥ शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥ ११ ॥

पंचीकृतेति ॥ पंचीकृत पंचमहाभूत जो हैं पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, नामरूप जगत्के परिणामी अर्थात् उपादानकारण तिनतें

है संभव कहे उत्पत्ति जिसकी सो प्रारब्धकर्मरचित आत्माके सुखदुःख भोगनेका आयतन कहे स्थान है. तिसका नाम स्थूल शरीर है. सो आत्माकी प्रथम उपाधि मुख्य है ॥ ११ ॥

अब सूक्ष्मशरीरकी उपाधि कहते हैं.

पंचप्राणमनोबुद्धिदशेंद्रियसम-
न्वितम् ॥ अपंचीकृतभूतोत्थं
सूक्ष्मांगं भोगसाधनम् ॥१२॥

पंचेति ॥ पंचप्राण कहे प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान; और मन कहे संकल्पविकल्परूप अंतःकरणकी वृत्ति; और बुद्धि कहे निश्चयरूप वृत्ति; और दशइंद्रिय श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, नासिका, और जिव्हा ये पंच ज्ञानइंद्रिय; और बानी, हाथ, पाद, गुदा, लिंग, ये पंच कर्मइंद्रिय ऐसे ऐसे सब मिलिकर सत्तरह वस्तुसंयुक्त अपंचीकृत पंचमहा सूक्ष्मभूत उपादानकारणतें उत्थं कहे उत्पत्ति सो

आत्माके सुखदुःख भोगनेका साधन जो सूक्ष्मांग कहे लिंगशरीर यह आत्माकी दूसरी उपाधि है १२

अब तीसरी कारणशरीरकी उपाधि कहते हैं.

अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ॥ उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥ १३ ॥

अनादीति ॥ अनिर्वचनीय तत्त्वज्ञानतें रहित जगत्की उत्पत्ति करनेकों समर्थ जो सत्य असत्य कही जाइ नहीं. काहेतें, जो मायाकों सत्य कहौ तौ ज्ञानकरिके नष्ट हो जाती है, और असत्य कहौ तौ असत्यतें जगत्की उत्पत्ति संभवै नहीं. तातें माया अनिर्वचनीय है, सो अनादि कहे उत्पत्तिरहित समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति करनेकों कारण कहे बीज है, सो यह आत्माकी तीसरी उपाधि है. अब तीनि उपाधि निरूपण करनेका प्रयोजन कहते हैं. 'उ-

पाधीति' कहे जो स्थूल सूक्ष्म कारण तीनि उ-
पाधि हैं तिनतें आत्माकों अन्य कहे इनतें जुदा
इनका साक्षी अर्थात् देखनेवालेनें अपने स्वरूप-
कों निश्चय करना की मैं असंग कूटस्थ साक्षी स-
च्चिदानंद ब्रह्म इनका देखनेवाला इनतें भिन्न हूं;
जैसे घटका देखनेवाला घटतें भिन्न होता है तै-
से मैं इनतें भिन्न हूं इति ॥ १३ ॥

शंका—उपाधि तीनितें भिन्न आत्माकी सच्चिदानंदरूपता जो तुम कहते हो सो नहीं संभवती. काहेतें की, आत्मा अन्नमयादि कोशरूप प्रतीत होता है. और श्रुतिभी कहती है सो एक पुरुष अन्नरसमय है इस कारणतें यह प्रतीत होता है की, कोशनतें भिन्न आत्मा है नहीं, कोशही आत्मा है.

उत्तर—आत्माकी अन्नमयादि कोशरूप जो प्रतीत है सो देहकी और आत्माकी एकरू-

पताके भ्रमकरिके प्रतीत होती हैं; वास्तव आत्मा पंचकोशनतें भिन्न है, सो दृष्टांतकरिके कहते हैं.

पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः ॥ शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा ॥ १४ ॥

पंचकोशेति ॥ अन्नरसतें जो होता है और अन्नहीतें बढता है, और अन्नरूप पृथिवीमें लय हो जाता है, सो अन्नमय कोश हैं; और पंच कर्मइंद्रिय और पंच प्राण मिलिके प्राणमय कोश होता है; पंच ज्ञानइंद्रिय और मन मिलिके मनोमय कोश होता है और पंच ज्ञानइंद्रिय और बुद्धि मिलिके विज्ञानमय कोश होता है; और कारणशरीरभूत अविद्या मलिनसत्वप्रधान प्रियादिवृत्तिसहित आनंदमय कोश होता है, सो ये अन्नमयादि जो पंचकोश हैं, तिनकरिके आत्मा-

की सच्चिदानन्दतादि रूपता आच्छादित अर्थात् ढकी हुई है. श्लोकविषे आदिपद है तिसतें स्थूलता, कृशता, क्षुधा, तृषा आदिक धर्मोंकों लेना तिनके जोग करिके मिथ्या तद्रूपता अर्थात् कोश और आत्माकी एकरूपताके भ्रमकरिके आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है. वास्तव आत्मा शुद्ध है; पर जिस जिस कोशके साथ आत्माका व्यवहार होता है सो सो कोशरूप आत्मा प्रतीत होता है. जैसे मैं मनुष्य हूं, मैं मोटा हूं, मैं पतला हूं, ऐसे अन्नमय कोशरूप प्रतीत होता है; और मैं भूखा हूं, मैं प्यासा हूं, ऐसे प्राणमय कोशरूप प्रतीत होता है; देह मेरी है, घर पुत्रादि मेरे हैं, मैं संसारी हूं, ऐसे मनोमय कोशरूप प्रतीत होता है; मैं ज्ञानवान हूं, मैं मूर्ख हूं, ऐसे विज्ञानमय कोशरूप प्रतीत होता है, अब मैं सुखी हूं ऐसे आनंदमय कोशरूप प्रतीत होता है. इस प्रकार अन्नमयादि कोशनके मिथ्या धर्म आत्माविषे भ्रमकरिके प्र-

तीत होते हैं, स्वाभाविक आत्माविषे कोई धर्म है नहीं; और श्रुतिनें जो आत्माकी अन्नमयादिरूपता कही है सो अरुंधतीके न्यायकरिके सूक्ष्मवस्तुके दिखानेविषे तात्पर्य है; काहेतें की, पंचकोशनकी उपाधीतें आत्माकों जीवरूपता है, और श्रुतिका यह तात्पर्य नहीं है की, आत्मा अन्नमयादिक पंच कोश है, और आत्मा एक है, कोश, अनेक हैं, कोश उत्पत्तिविनाशवाले हैं, आत्मा अविनाशी है, कोश धर्मवाले हैं, आत्मा संपूर्ण धर्मनतें रहित है, तौ आत्मा कोश कैसे हो सकता है ? सो दृष्टांततें कहते हैं. जैसे स्वभावकरिके स्फटिक शुद्ध है परंतु नीलपीतादि वस्त्रके योगकरिके नीला, पीला प्रतीत होता है, स्वाभाविक स्फटिक नील पीत है नहीं ॥ १४ ॥

कोश और आत्माकी एकरूपताका जो अभ्यास तिस अभ्यास करिके आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है, तिन कोशनतें आत्माका विवेचन

अर्थात् भिन्न करै तौ आत्माविषे कोई भेद है नहीं. तिसकों दृष्टांतकरिके कहते हैं.

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यावघाततः ॥ आत्मानमंतरं शुद्धं विविच्यात्तंडुलं यथा ॥ १५ ॥

वपुस्तुषादिभिरिति ॥ जैसे चाउरका स्वरूप भीतर शुद्ध अरु शुक्लरूप है सो भूसीकरिके ढंका हुवा भूसीरूप प्रतीत होता हैं, तिसकों जुक्तीतें कूटिके भूसीतें जुदा करि लेते हैं, तैसे अन्नमयादि कोशनकों जुक्तिरूप विचारतें तिन कोशनके भीतर जो शुद्ध आत्मा है तिसकों जुदा करि लेते हैं, सो विचारका स्वरूप कहते हैं. अन्नमय कोश आत्मा नहीं है, काहेतें पंचभूतनका कार्य है. घटादिवत् और जो अन्नमय कोशकों आत्मा मानौ तौ वर्तमान शरीरविषे जो सुखदुःख भोगते हैं सो विना कर्म करेहीं फल भोगने परे,

अरु इस शरीरकरिके जो पुण्यपापरूप कर्म तिनका फल विना भोगनेतेंही नाश भये अरु शरीर अवश्य नाश होता है; तातें अकृतनाशकृताभ्यागम दोष होता है, तिसका परिहार किसीतेंभी होता नहीं, और जन्मतें पहिले यह शरीर था नहीं, और मरणतें पीछे भी रहैगा नहीं, तातें किसी प्रमाणकरिके आत्मा अन्नमयकोश सिद्ध होता नहीं और प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं. काहेतें की, प्राणमयकोश भी अपंचीकृत पंचमहाभूतनका कार्य हैं, और जड है, स्थूलकी तरह और मनोमयकोश भी आत्मा नहीं. काहेतें की, मन भी संकल्पविकल्पवाला है, आत्माविषे संकल्पविकल्प है नहीं; और मन सतोगुणका कार्य हैं, आत्मा तौ सतोगुणका कार्य नहीं. और विज्ञानमय कोशभी आत्मा नहीं; काहेतें, विज्ञानमय कोशभी सतोगुणका कार्य है, और परिणामी हैं, आत्मा परिणामी है नहीं, और आनंदमयकोशभी आत्मा नहीं. काहेतें अवि-

द्यारूप वृत्तिवाला और जड है, घटादिकी तरह और आनंदमयकोश मलिनसत्व प्रियादि वृत्तिवाला है, आत्मा अविद्याकी वृत्तिवाला नहीं और जड नहीं, ऐसे जो पंचकोश हैं तिनतें जुदा प्रत्यगात्मा जो है परमात्मा सच्चिदानंदस्वरूप साक्षीकी निश्चय करना ॥ १५ ॥

शंका—आत्माकों ब्रह्मरूपता होनेतें व्यापकता करिके सर्वत्र प्रतीत होना चाहिये, और तुम भी कहते हौ की, आत्मा सर्वत्र व्यापक है, परंतु सर्वत्र प्रतीत कहे नहीं होता ॥

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते ॥ बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिंबवत् ॥ १६ ॥

उत्तर—सदेति ॥ आत्मा सर्वगत भी है अरु सर्वत्र व्यापकरूप स्थित भी है; परंतु सर्वत्र प्रतीत नहीं होता और अस्ति भाति प्रिय

रूपकरिके सदा सर्वत्र घटादि पदार्थनविषे प्रतीत भी होता है. तात्पर्य यह, अनुभवरूपता कहे सर्वका अनुभव अर्थात् जाननेवाला विशेषिरूपकरिके बुद्धिविषे भली प्रकार प्रतीत होता है; काहेतें, बुद्धि सतोगुणका कार्य होनेतें शुद्ध है; जैसे घट, भीति, कांच आदिक सर्व मृत्तिकाके कार्य हैं; परंतु कांच शुद्ध है, इस कारणतें दर्पणविषे प्रतिबिंब प्रतीत होता है; जैसे सूर्य अपनी किरणद्वारा सर्वत्र व्यापक है; परंतु घटादिविषे प्रतीत नहीं होता और जलादिकेविषे प्रतीत होता है, तैसे देहादि पदार्थ रजतमका कार्य हैं, तिनविषे आत्मा प्रतीत नहीं होता इति ॥१६॥

अब देहइंद्रिय आदि संघातविषे आत्मा वर्तमान भी है, परंतु तिनतें जुदा है तिसकों राजाके दृष्टांत करिके दृढ करते हैं ॥

देहेंद्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो वि-
लक्षणम् ॥ तद्वृत्तिसाक्षिणं विंद्या-
दात्मानं राजवत्सदा ॥ १७ ॥

देहेति ॥ देहइंद्रियादि संघातविषे वर्तमान आत्माकों देह, इंद्रि, मन, बुद्धि जो हैं प्रकृति कहे मायाके कार्य जड परिणामी और दृश्य तिनतें जुदा चैतन्यस्वरूप परिणामरहित अदृश्यस्वरूप तिन देहादिकी जैसे बालकादिअवस्था वृत्ति और रूपरसादि विषय आकारकों नेत्रादि वृत्तिकरि जानना और संकल्पविकल्पात्मक मनकी वृत्ति, और निश्चयात्मक बुद्धिकी वृत्ति, और आकाशादि आकारपरिणामरूप मायावृत्ति, तिन सर्व वृत्तियोंका साक्षी आत्माकों भिन्न जानना; जैसे अपनी सभाविषे राजा संपूर्ण सभावाले पुरुषनका साक्षी प्रेरक आप तिनतें जुदा अर्थात् तेजःपुंज प्रताप आदिक गुणयुक्त सभावालोंतें भिन्नही है ॥ १७ ॥

शंका—आत्माकी साक्षीरूपताका जो ज्ञान तुम कहते हौ सो बनै नहीं. काहेतें की, संघातविषे आत्मा व्यवहारवाला प्रतीत होता है और साक्षी साक्ष्यतें भिन्न होता है.

उत्तर—अज्ञानियोंकों भ्रमकरिके आत्मा व्यापारी प्रतीत होता है, वास्तव आत्माविषे कोई व्यापार नहीं. तिसकों दृष्टांतकरिके कहते हैं ॥

व्यापृतेष्विंद्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ॥ दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ॥ १८ ॥

व्यापृतेष्विति ॥ नेत्रआदि इंद्रियोंविषे अपना अपना जो इंद्रियोंका व्यवहार है सो आत्माका है, अर्थात् आत्माही व्यवहार करनेवाला है, ऐसे अविवेकी पुरुष जो गुरुशास्त्रादि उपदेशरहित मूर्ख हैं सो आत्माकों मानते हैं, और तत्त्ववेत्ता नहीं मानते. जैसे आकाशविषे वायुके वेगतें

वहर दौरते हैं, तिनविषे मूर्ख चंद्रमाकों दौरता मानते हैं की चंद्रमा दौरता है ॥ १८ ॥

शंका—देहइंद्रिय आदिक जड पदार्थनकों तुम व्यापारी कहते हौ तौ देहइंद्रियादिकोंकों चैतन्य-भी मानना चाहिये और चैतन्यता अंगीकार करौगे तौ देह इंद्रियादिकोंकों आत्मता कैसे न होवैगी? तात्पर्य यह आत्मता अवश्य माननी योग्य है ॥

उत्तर—चैतन्यआत्माके आश्रय देहइंद्रिय अपने अपने व्यवहारविषे वर्तती हैं, वास्तव देहइंद्रिय चैतन्य नहीं.

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ॥ स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः ॥१९॥

आत्मचैतन्यमिति ॥ चैतन्यस्वरूप जो आत्मा है, तिसके आश्रय देहइंद्रियादिक अपने

अपने अर्थविषे वर्तती अर्थात् व्यवहार करती हैं. जैसे लोकविषे संपूर्ण भोग सूर्यके प्रकाशके आश्रय अपने अपने व्यवहारोंविषे वर्त्तते हैं. तातें देहइंद्रिय आदिक स्वतै चैतन्य नहीं इस कारणतें तिनकों आत्मता नहीं संभवती इति ॥१९॥

शंका–आत्मा चैतन्यरूप तौ है, परंतु मैं जन्मता हूं, मैं मरता हूं, मैं बालक हूं, मैं जवान हूं, मैं वृद्ध हूं, मैं काणा हूं, मैं बधिर हूं, मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, ऐसे व्यवहार आत्माविषे प्रतीत होते हैं, तातें आत्मा जन्ममृत्युवाला संभवता है ॥

उत्तर–जन्ममृत्युतें आदि लेकर देहइंद्रियादिकके धर्म अविवेककरिके आत्माविषे आरोप करते हैं, अपने अज्ञानतें वास्तव देह इंद्रियादिक धर्मनतें आत्मा रहित है. तिसकों दृष्टांत करिके दृढ करते हैं ॥

देहेंद्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चि-
दात्मनि ॥ अध्यस्यंत्यविवेकेन
गगने नीलिमादिवत् ॥ २० ॥

देहेंद्रियेति ॥ देह अरु इंद्रियनके जो गुण और अंध बधिरादि धर्म, और गमनवचनादि कर्म, सो अमल कहे मायामलरहित अर्थात् अज्ञानके जो हैं कार्य देहइंद्रिय नामरूप संसार-मल तिसतें रहित सत् चित् आनंदस्वरूप आत्मा-विषे मूढ अविवेक करिके मिथ्या आरोप करते हैं, वास्तव आत्माविषे जन्ममरणादि कोई धर्म है नहीं. जैसे रूपरहित आकाशविषे मूढ अविवेक करिके नीलपीतादि रंगनका आरोप करते हैं २०

शंका—देह इंद्रियादिकके जन्मादिक धर्म आत्माविषे मति होउ. परंतु मैं कर्ता हूं, मैं भो-क्ता हूं, मैं पुण्यमान् हूं, मैं पापी हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, यह निरंतर प्रतीत होता है. तातें

आत्मा कर्ता भोक्ता तौ है, और वैशेषिक जो हैं काणादके मतवाले तिननें आत्माकों कर्ता भोक्ता अंगीकार भी करा है ॥

उत्तर–कर्ता भोक्ता इत्यादि जो धर्म हैं सो अंतःकरणके हैं, सो अंतःकरण और आत्माकी एकरूपताके अध्यास अर्थात् भ्रमकरिके आत्मा-विषे आरोप हैं. तिसकों दृष्टांत करिके कहते हैं,

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वा-
दीनि चात्मनि ॥ कल्प्यंतेऽबुगते
चन्द्रे चलनादिर्यथांभसः ॥२१॥

अज्ञानादिति ॥ मनकी जो है उपाधि कर्तृत्व भोकृत्व आदिक धर्म तिनकरिके अज्ञानतें आत्माकी सच्चिदानंदरूपता ढकी हुई है, इस कारणतें आत्माका यथार्थ स्वरूप ना जानिके वैशेषिकादि मूर्खता करिके सच्चिदानंदस्वरूप आत्माविषे कल्पते हैं. जैसे चलनादिक जो जलके धर्म हैं, जो

जलविषे प्रतिबिंबभावकों प्राप्त चंद्रमाविषे भोग मूर्खतातें कल्पते हैं ॥ २१ ॥

अब राग इच्छादिक जो अंतःकरणके धर्म हैं, सो अज्ञानकरिके आत्माविषे कल्पते हैं. सो अन्वयव्यतिरेक युक्तिकरिके कहते हैं.

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते ॥ सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः ॥ २२ ॥

रागेच्छा इति ॥ राग कहे विषयोंविषे विशेष अभिलाष, इच्छा कहे सामान्य अभिलाष, और सुखदुःखादि कर्तृत्व, भोक्तृत्व सर्व धर्म जाग्रत और स्वप्न अवस्थाविषे बुद्धि वर्तती है, यह अन्वय है, और सुषुप्ति अवस्थाविषे बुद्धि अपने कारणरूप अज्ञानविषे लय हो जाती है; तब रागादि धर्म कोइ भी प्रतीत होते नहीं, यह व्यतिरेक

है. तिस कारणतें रागादि धर्म बुद्धिके हैं. आत्मा-के नहीं, ऐसा निश्चय करना इति ॥ २२ ॥

प्रश्न– जब रागादि आत्माके स्वभाव नहीं हैं, तौ आत्माका स्वभाव कैसा है, यह कृपा करिके कहौ.

उत्तर–आत्माका स्वभाव दृष्टांतकरिके कहते हैं.

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यम-
ग्नेर्यथोष्णता ॥ स्वभावः सच्चिदा-
नंदनित्यनिर्मलतात्मनः ॥ २३ ॥

प्रकाश इति ॥ अर्क कहे सूर्यका जैसे प्रकाश स्वभाव अर्थात् स्वरूप है, जलका शीतल स्वरूप है, और जैसे अग्निका उष्ण स्वभाव अर्थात् स्वरूप है; तैसे आत्माका सत् चित् आनंद नित्य निर्मल स्वभाव अर्थात् स्वरूप है इति ॥ २३ ॥

शंका–मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं, ऐसे ज्ञा-

न और सुखकी आश्रयता आत्माकी प्रतीति होती है, तौ तुम निर्विकार सच्चिदानंदस्वरूप कैसे कहते हौ?

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्ति-
रिति द्वयम्॥ संयोज्य चाविवेके-
न जानामीति प्रवर्तते॥ २४॥

उत्तर–आत्मन इति॥ प्रत्यगात्माका जो है सत् चित् अंश अर्थात् बुद्धिकी वृत्तिविषे आत्माकी आभास कहे छाया, और अज्ञानस्वरूप आनंदका अंश जो है बुद्धिकी वृत्ति तिन दोनोंकों एकमें मिलाइके अविवेकतें मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं; ऐसा जीव मानता है और वास्तव आत्मा असंग सर्व संबंधरहित है. जानना, सुनना, सुखदुःखादि असंग आत्माविषे किसी प्रकारतें बने हैं नहीं, और ज्ञान, सुखादि आकार वृत्तिरूप परिणाम बुद्धिका है. सो ज्ञान, सुखादि आश्रयता

बुद्धिविषे हैं, आत्माकी नहीं, और जो आत्मावि-
षे प्रतीत होते हैं सो बुद्धि और आत्माकी एक-
रूपता करिके भासते हैं, वास्तव आत्मा निर्विकार
सच्चिदानंदस्वरूप है इति ॥ २४ ॥

सो विशेष करिके कहतें हैं ॥

**आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बो-
धो न जात्विति ॥ जीवः सर्वमलं
ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ॥ २५ ॥**

आत्मन इति ॥ आत्माविषे तौ किसी त-
रह कोइ भी विकार है नहीं. काहेतें की, आत्मा
निर्गुण है और निष्क्रिय कहे क्रियारहित है और
शांत है, निरवद्य कहे वानीकरिके कहा नहीं जाता
और निरंजन कहे मायाके लिपतें रहित हैं; ऐसे
श्रुति भी आत्मस्वरूपका निर्णय करती है. "निर्गुणं
निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनं" इति श्रुतेः ॥ "अव्य
क्तोयमचिंत्योयमविकार्योयमुच्यते" इति स्मृतेश्च ।

बुद्धिविषे तौ बोधकी शंकाकी नास्ति है; काहेतें, की मायाका कार्य होनेतें जड है. तौ भी अंतःकरण अविच्छिन्न अर्थात् उपाधिवाले चेतनकी चेतनताकरिके संपूर्ण देह, इंद्रिय, अंतःकरणादि जड पदार्थ चेतनात्मक प्रतीत होते हैं, सो अन्तःकरण और आत्माके अभेदज्ञानकरि बुद्धीके कर्त्ता, भोक्तादिक धर्म अज्ञानतें आत्माविषे प्रतीत होते हैं, सो मिथ्याभ्रम है; आत्माविषे किंचित् भी विकार है नहीं ॥ २५ ॥

अब आत्माविषे अन्यथा आरोप, अज्ञानका फल और तत्त्वज्ञानका फल दिखाते हैं.

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा
भयं वहेत्॥ नाहं जीवः परात्मेति
ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत्॥ २६ ॥

रज्जुसर्पवदिति ॥ जैसे महाअंधकारविषे विकाररहित रस्सी आदिविषे सर्प आदि-

के आरोपतें भयकंपादि दोष पुरुषकों प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार सर्व विकाररहित आत्माकों सद्धि जीव कहे सद्धितीय परिच्छिन्नसंसारी अज्ञान करिके जानता है; ऐसी आत्माविषे मिथ्या निश्चयतें नानाप्रकारकी संसारी पीडानिमित्त भयकों प्राप्त होता है, ऐसा श्रुतिभी कहती है. द्वैतकरिके पुरुषकों नानाप्रकारके भय होते हैं; और अपने और आत्माविषे अंतर अर्थात् भेद मानता है; तिस पुरुषकों जन्ममरणका भय अवश्य होता है; और जो पुरुष आत्मस्वरूपकों नहीं जानता सो अवश्य नष्ट होता है; और स्मृतिभी कहती है, जो किंचित् भेद भी आत्मा और परमात्मामें मानता है सो पुरुष अवश्य नरकमें प्राप्त होता है. तथा च श्रुतिः॥ "द्वितीयाद्वै भयं भवति। उदरमंतरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति। न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः" इति श्रुतेः॥ "ईषदप्यंतरं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्" इति स्मृतेश्च॥ और जब ऐसा जानता है की, मैं जीव नहीं, मैं तो अखण्ड

अद्वितीय सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मा जगत्साक्षी असंग ब्रह्म हूं, इस प्रकार तत्त्वमस्यादि महावाक्य करिके जानता है सो पुरुष निर्भय हो जाता है. "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भव" इति श्रुतेः ॥ २६ ॥

शंका—अति समीप जो आत्मा है, तौ मन बुद्धि आदिक आत्माकों काहे नहीं जानते वा देखते हैं.

उत्तर—मन आदि संपूर्ण दृश्य जड पदार्थ हैं, तिनकरिके आत्मा नहीं जाना जाता, यह कहते हैं.

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादी-
नींद्रियाणि च ॥ दीपो घटादिव-
त्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते॥२७॥

आत्मेति ॥ आत्मा केवल एक है; सो संपूर्ण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादिकनकों भासयति कहे प्रकाशता है, सो मन, बुद्धि आदि जड-

नकरिके नहीं भासता, अर्थात् नहीं प्रकाशता. जैसे एकही दीप घटादि सर्व पदार्थनकों प्रकाशता है. और घटादि मलिन पदार्थनकरिके दीप नहीं प्रकाशता ॥ २७ ॥

शंका—आत्मा बुद्धिकरिके जो नहीं जाना जाता अर्थात् नहीं प्रकाशता तौ आत्मस्वरूप जाननेके लिये कोई और दूसरा ज्ञान चाहिये.

उत्तर—आत्मा आपही बोधस्वरूप है इसलिये आत्माकों बोधांतरकी इच्छा है नहीं, तिसकों दृष्टांतकरिके कहते हैं.

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः ॥ न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते॥२८॥

स्वबोधे नेति ॥ आत्मा आपही बोधस्वरूप है, इस प्रकार नित्य बोधस्वरूप होनेतें दूसरे बोधकी इच्छा नहीं. काहेतें की, आत्मा अनुभव

अर्थात् चेतनस्वरूपही है. जैसे दीपककों अपने प्रकाश करनेकों दूसरे दीपककी इच्छा नहीं ॥२८॥

शंका—जब आत्मा आपही प्रकाशमान साक्षात्कार है तौ विना जतनही सर्व पुरुष मुक्त हैं. आत्मज्ञानका कुछ प्रयोजन है नहीं. काहेतें की, साक्षात्कारपर्यन्त संपूर्ण जतन हैं, साक्षात्कार भयेतें जीव सर्व बंधरहित ब्रह्मस्वरूप हो जाता है.

उत्तर—आत्माकी चैतन्यरूपता अरु अपरोक्षताका जो ज्ञान है, सो सामान्य ज्ञानका कथन है. मुक्तिका साधन नहीं, तौ मुक्तिका साधन कौन है, ऐसा पूछै तौ श्रवण कर. महावाक्यजन्य जो ब्रह्म और आत्माकी एकताका कथन है सो मुक्तिका साधन है. सो कहते हैं.

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेती-

ति वाक्यतः ॥ विंद्यादैक्यं महावा-
क्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २९ ॥

निषिध्येति ॥ नेति नेति इति वाक्य करि-के निखिल कहे संपूर्ण उपाधियोंका निषेध कहे त्याग करै. और महावाक्यके प्रमाणकरिके जीव आत्मा अरु परमात्माकों निश्चय करै. 'अर्थात् आदेशो नेतिनेतीत्येतन्निरसनं' इति. यह व्यासनारायणनें श्रुतिसूत्र कहा है, तिसका अर्थ यह है—नेति नेति कहे न इति, न इति, ऐसे दो वचन अनंगीकारविषे तात्पर्य है. यह नहीं, यह नहीं, ऐसे वेदकी आज्ञारूप उपदेशकरिके संपूर्ण जो समष्टि-व्यष्टिरूप उपाधि हैं, स्थूल, सूक्ष्म वा कार्य, कारण अथवा नामरूपकों निषेध अर्थात् अनात्म जड पदार्थनका त्याग करै और संबंध तीनिसहि- 'तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मीति' इन वेदनकी महावाक्यनकरिके अनुभव

आत्मा और परमात्माकी एकरूपताकों निश्चय करै, तिसी निश्चयका नाम मुक्ति है, सोई मुक्तिका साधन है, तिसका नाम तत्वज्ञान है. अब संबंध तीनी कहते हैं. सामानाधिकरण्यं १, विशेषणविशेष्यता २, लक्ष्यलक्षणभाव ३. तहां जिस वस्तुका जिस वस्तुके साथ सदा अभेद होवै सो मुख्य सामानाधिकरण्य है. जैसे सुवर्ण और भूषणगत सुवर्णका सदा अभेद होवै है, और जिस वस्तुका जिस वस्तुके साथ बाधकरिके अभेद होवै सो बाधसामानाधिकरण्य है. जैसे नामरूप भूषणके बाधकरिके सुवर्णरूपताकों प्राप्त होता है, सो बाधसामानाधिकरण्य है, अथवा दो पदनकी प्रवृत्ति भिन्न भिन्न होवै, और दो पदनका अर्थ एकही होवै. जैसे घट और कुंभ शब्द भिन्न भिन्न हैं; परंतु लक्ष्य मृत्तिका दोनोंकी एक है, अथवा जैसे 'सोऽयं देवदत्तः' इस वाक्यके तीनि पद हैं, सः।अयं।देवदत्तः। तहां सो जो

है सो परोक्ष देशकालका वाचक है, और अयं अ-परोक्ष देशकालका वाचक है, ऐसे दोऊ पदनका प्रवृत्तिनिमित्त जुदा जुदा है, परंतु दोऊ पदनका तात्पर्य देवदत्तस्वरूपविषे है, अर्थात् देवदत्तविषे संबंध है. काहेतें की, दोऊ पदनका निमित्त मात्र भिन्न भिन्न है, और प्रवृत्ति देवदत्तस्वरूपविषे है, यह सामानाधिकरण्य है. इसी प्रकार तत्त्वमसि वाक्यविषे परोक्षादिसहित जो चेतन तत्पदका वाच्य अर्थ; और अपरोक्षादिसहित जो चेतन त्वंपदका वाच्य अर्थ; इन दोऊ पदनका भी निमित्त जुदा जुदा है, और प्रवृत्ति दोऊ पदनकी एक शुद्ध चेतनविषेही है, अर्थात् दोऊ पदनका संबंध शुद्ध चेतनतें है, अथवा तात्पर्य चेतनविषेही है. यह सामानाधिकरण्य प्रथम संबंध है, और विशेषणविशेष्यता दूसरा संबंध है. जैसे 'सोयं देवदत्तः' सो और अयं ये दोऊ पद देवदत्तके विशेषण हैं. और देवदत्तस्वरूप विशेष्य है, तिन दोऊ

परस्पर संबंध हैं; काहेतें की, सो और अयं ये दोऊ देवदत्तके स्वरूपके निश्चय करावनेवाले हैं. तैसे तत्त्वमसि वाक्यविषे भी तत्पदार्थ जो है परोक्षादि विशेषणसहित चैतन्य और त्वंपदार्थ जो है अपरोक्षादि विशेषणसहित चैतन्य सो परस्पर भेदव्यवहार तिनका विशेषणविशेष्यभावसंबंध है. और तीसरा लक्ष्यलक्षणभावसंबंध है. जैसे तिसविषे भी सो और अयं शब्द जो हैं चैतन्यके विशेषण सो ये दोऊ पद लक्षण हैं. और देवदत्त मात्र लक्ष्य है. यह लक्ष्यलक्षणभावसंबंध है. इसीतरह तत्त्वमसि वाक्यमें तत् त्वंपदनका वाच्यअर्थविषे सद्वितीय अद्वितीय परोक्ष अपरोक्ष व्यापक परिच्छिन्न आदिका जो परस्पर विरोधधर्मवाले हैं, तिनकों त्याग करिके विरुद्धधर्मरहित अखंड सच्चिदानंद चैतन्यके साथ लक्ष्यलक्षणभावसंबंध है इति. सो ये तीनि संबंधद्वारा लक्षणाकरिके जीवब्रह्मकी एकतासिद्धि होती है; तातें लक्षणाका स्वरूप

कहते हैं. सो लक्षणा जहती, अजहती, जहताजहती भेदतें तीनि प्रकारकी है, तहां प्रथम जहतीलक्षणा कहते हैं. जैसे गंगामें घर है, तौ गंगापद्का जो है वाच्य अर्थ प्रवाह तिसविषे घरका असंभव है, इसलिये गंगापद्की तीरविषे लक्षणा है. और वाच्य अर्थका संपूर्ण त्याग है. सो महावाक्यविषे जहतीलक्षणा बनै नहीं; काहेतें की, महावाक्यमें संपूर्ण वाच्य अर्थका त्याग नहीं, और अजहतीलक्षणा, जैसे अरुणो धावति सो बनै नहीं; काहेतें की अरुणनाम लाल रंगका है, तिसविषे धावना बनै नहीं. तातें लाल घोडा दौरता हैं, सो अजहतीमें वाच्य अर्थका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण है, सो भी महावाक्यविषे बनै नहीं; काहेतें, महावाक्यमें वाच्य अर्थका संपूर्ण ग्रहण नहीं. तीसरी जहताजहती अर्थात् भागत्यागलक्षणा है, कहे एक भागका त्याग, एकका ग्रहण सो महावाक्यविषे माना है. जैसे सोयं देवदत्त जैसे सो और अयं सो सो देशकालविशेषण

अंशकों त्यागिके अखंड देवदत्तस्वरूपमात्रमें भाग-त्यागलक्षणा है, तैसे तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्य-नविषे समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्मरूप वाच्यअर्थवि-रोध अंशकों त्यागिके व्यापक अखंड चैतन्यमात्र ल-क्ष्यकों ग्रहण भागत्यागलक्षणा जाननी इति ॥२९॥

शंका—स्थूलादि उपाधिनकों न त्याग करै तौ हानि तौ कुछ है नहीं; काहेतें चैतन्य असंग है.

उत्तर—उपाधिनके त्यागविना अखंड सच्चि-दानंद स्वरूपका जानना अति कठिन है, जैसे अज्ञानकरिके आरोपित सर्पके निषेधविना रज्जु-का यथार्थ स्वरूप नहीं जानते, तैसे स्थूल शरीर आदिके निषेधविना सच्चिदानंद परमात्माकी नि-श्चय नहीं होती ॥

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बु-
दवत् क्षरम् ॥ एतद्विलक्षणं वि-
द्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥

आविद्यकमिति॥ देह, इंद्रिय आदिक जो हैं संपूर्ण दृश्य पदार्थ सो अविद्याकल्पित बुद्बुद-वत् क्षर कहे नाशमान हैं. तातें सर्वका निषेध अर्थात् त्याग करै, तिनतें भिन्न सच्चिदानंदस्वरू-प निर्मल कहे अविद्यामलरहित ब्रह्म मैं हूं, ऐसा निश्चय करै, तौ पुरुष कृतकृत्य होइ इति॥ ३०॥

अब महावाक्यजनित ज्ञानकी पूर्वोक्त ब्रह्म और आत्माकी एकता ज्ञानकी दृढताके लिये तत्त्वज्ञानका मनन करनेका प्रकार कहते हैं॥

देहान्यत्वान्न मे जन्मजराका-
र्श्यलयादयः॥ शब्दादिविषयैः
संगो निरिंद्रियतया न च॥ ३१॥

देहान्यत्वादिति॥ देह कहे स्थूल श-रीरके जो हैं जन्म, जरा, कृशता, मृत्यु; आदि पदतें क्षुधातृषादि धर्म, सो मेरेविषे है नहीं. काहेतें, मैं नित्य जन्म जरा मरण परिणामतें रहित सत्

चित् आनंदस्वरूप देहतें भिन्न हूं, और शब्द स्प-र्शादिक जो पंचविषय हैं, सो भी मेरेविषे नहीं. काहेतें, मैं असंग कूटस्थ साक्षी आत्मा निरिंद्रिय कहे संपूर्ण इंद्रियोंतें रहित हूं, पंचभूतनके कार्य जो हैं, इंद्रिय और विषय तिनका परस्पर संयोग वियोग होउ अरु मैं तौ नित्य हूं, इसलिये किसी-का कार्य नहीं, इस कारणतें मेरे असंगस्वरूपका वास्तव किसीका संबंध है नहीं इति ॥ ३१ ॥

अब मनके धर्मनकों भी आत्माविषे निषेध करते हैं ॥

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभ-
यादयः ॥ अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र
इत्यादिश्रुतिशासनात् ॥ ३२ ॥

अमनस्त्वादिति॥दुःख राग कहे विषयोंविषे प्रीति औ द्वेष कहे वैर, संकल्प, विकल्प, मोह, शो-क, भय इत्यादि संपूर्ण मनके धर्म हैं, मेरे नहीं.

काहेतें की, मैं अमन कहे मनतें रहित अर्थात् भिन्न मनका साक्षी हूं, और क्षुधा, तृषा आदिक जो प्राणोंके धर्म हैं सो भी मेरेविषे नहीं, काहेतें, अप्राण कहे मैं प्राणोंतें रहित अर्थात् भिन्न साक्षी हूं. तिसतें क्षुधा, तृषा, काणत्व, बधिरत्व आदि धर्म मेरेविषे नहीं. जिसतें मैं मनतें भिन्न हूं, इस कारणतें, रागद्वेषादि भी धर्म मेरेविषे नहीं, और मैं शुभ्र हूं, इसतें मलिनरूप स्थूल देहतें भी भिन्न हूं. काहेतें की, जन्ममरणादि धर्मनका आत्माविषे निषेध है, और अपने कार्यवर्गतें परे अर्थात् भिन्न और अक्षर अर्थात् अव्यक्त कहे मूलमायातें भिन्न इसतें मूढता आदि अज्ञान धर्म भी मेरेविषे नहीं, इस कारणतें मैं निर्विकार शुद्ध चैतन्य ब्रह्म हूं इति ॥ ३२ ॥

जो अन्य पदार्थ हैं, सो अनित्य हैं; इस कारणतें प्राण आदिकनकी अनात्मताकों साधन करते हैं.

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥ खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥ ३३ ॥

एतस्मादिति ॥ प्रत्यगभिन्न कहे प्रतिशरीरनमें अंतःकरणका साक्षी वा प्रेरक अथवा असत् जड दुःखरूप संसारतें विपरीत स्वभाववाला सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मतें प्राण जो हैं क्रियाशक्ति, अंतःकरण जो है मन ज्ञानशक्ति, अरु संपूर्ण दश इंद्रिय और देहादिक खं जो है आकाश, वायु, ज्योति जो है अग्नि, आप कहे जल और पृथ्वी जो है संपूर्ण स्थावरजंगमरूप प्राणियोंको धारण करनेवाली, इतना प्रपंच अनादि अविद्याकरिके उत्पन्न होता भया है इति ॥ ३३ ॥

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरंजनः ॥ निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ॥ ३४ ॥

निर्गुण इति॥ प्रकृति जो है माया, तिसका जो कार्य है बुद्धि, तिसतें भिन्न और सतोगुणादि और राग इच्छादिरहित मैं निर्विकार साक्षी ब्रह्म हूं, और निष्क्रियः कहे देह इंद्रिय आदि क्रियारहित हूं. अर्थात् देह इंद्रियादितें जुदा हूं. और मैं नित्य हूं, सर्व कालमें चैतन्यरूप हूं, और निर्विकल्पः कहे संकल्पविकल्पधर्मवाले मनतें भिन्न हूं. और निरंजन कहे मायाका जो है कार्य जगत्‌रूपी मल तिसतें रहित हूं. और निर्विकार कहे विकार जो है मायाका कार्य, जगत् मिथ्या कल्पित तिसका मैं अधिष्ठान हूं, आकाशवत् स्वतंत्र निरवयव हूं, और नित्यमुक्त कहे मोहादिक जो हैं बंधन अज्ञानकल्पित, सो वास्तव मेरे असंग स्वरूपविषे है नहीं, और मैं निर्मल हूं कहे अज्ञान अविद्यारूप मलतें रहित हूं इति॥ ३४॥

शंका—गुरुकी शिष्यप्रति यथार्थ तेरा स्व-

रूप इसी प्रकार है; परंतु परिच्छिन्न तौ है. काहेतें की, देहवान् प्रतीत होता है.

उत्तर—असंग आत्माका किसी पदार्थका संग नहीं.

अहमाकाशवत्सर्वंबाहिरंतर्गतो-
ऽच्युतः ॥ सदा सर्वसमः शुद्धो
निःसंगो निर्मलोऽचलः ॥ ३५ ॥

अहमिति ॥ संपूर्ण जो हैं जन्य पदार्थ जड जगत् नाम रूप दृश्य तिसके भीतर मैं आकाशवत् व्यापक और सबतें भिन्न किसीमें लिप्त नहीं. तात्पर्य यह—मैं प्रत्यक्चैतन्यरूप अस्ति, भाति, प्रियरूप करिके सबके बाहर भीतर एकरस व्यापक हूं.

शंका—तौ सर्वके विनाश होनेतें तेरा भी विनाश होवैगा.

उत्तर—अच्युत इति, संपूर्ण कल्पित जगत्के

विनाश होनेतें मेरा विनाश है नहीं. काहेतें, मैं अधिष्ठानस्वरूप हूं.

शंका—अधिष्ठानरूपताकरिके तूं विनाशरहित तौ है, परंतु अंतःकरणादिविषे तूं अपनी सत्ता और चैतन्यता दो प्रकारकी सत्ता देनेवाला और घटादि पदार्थनविषे केवल सत्तामात्रही है, तातें तेरी विषमसत्ता तौ है.

उत्तर—सदा सर्वसम इति ॥ मैं सदा सर्वपदार्थनविषे सम हूं. परंतु अंतःकरणादि जो हैं, सो सतोगुणका कार्य होनेतें स्वच्छ है. इसकारणतें तिनविषे आत्माकी सत्ता चैतन्यता दो प्रकारकी प्रतीत होती है. और घटादि तमोगुणका कार्य होनेतें मलिन हैं. तिनविषे केवलसत्तामात्र ही प्रतीत होती है, चैतन्यता नहीं और सर्व पदार्थनविषे आत्मा सम है, इस कारणतें आत्माविषे समविषमभाव नहीं है, अरु शुद्ध कहे

पुण्यपापसंबंधरहित हूं और असंग कहे वास्तव सर्व संबंधरहित हूं. और निर्मल कहे संशयादि-मलरहित हूं और अचल कहे सच्चिदानंदस्वरूप चलाचल धर्मनतें रहित हूं इति ॥ ३५ ॥

अब प्रत्यगात्मा जो है त्वंपदार्थ जीवात्मा, तिसका जिस प्रकारका लक्ष्यस्वरूप बरनन करा है, तिसी प्रकारका तत्पदार्थब्रह्मका लक्ष्यस्वरूप भी बरनन करा है, तिन दोनुओंका अभेद अनुसं-धान अर्थात् चिंतन करते हैं.

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखंडानंदम-
द्वयम् ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं यत्
परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ ३६ ॥

नित्येति ॥ नित्य कहे भूत, भविष्य, वर्तमा-न कालविषे बाधारहित शुद्ध अविद्या आदि मलरहित विमुक्त संसाररहित एक सजातीय भेद-शून्य, अखंड, देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य, आनंद-

सुखस्वरूप, अद्वय, विजातीय, स्वगतभेदरहित इस प्रकारका जो है परब्रह्मका स्वरूप "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म इति" श्रुतिप्रतिपादित जो है सच्चिदानंदस्वरूप सो ब्रह्म मैं हूं ॥ ३६ ॥

इस प्रकार जो पुरुष बहुत कालपर्यंत अभ्यास करता है, तिसकरिके जिस समयमें दृढ भया ब्रह्म और आत्माका ज्ञान, तिसी समयमें अविद्या जो है अज्ञान और तिसका कार्य जन्ममरणरूप संसार, तिसकी नाश कर देता है. यह कहते हैं.

एवं निरंतराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना ॥ हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम् ॥ ३७ ॥

एवमिति ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त कही हुई रीतिसें निरंतर बहुत काल जो पुरुष आदरपूर्वक मनन करता है, तिसतें उत्पत्ति होती है दृढ वासनाकी मैं ब्रह्म हूं, सो देह और आत्माके ज्ञानव-

त् ब्रह्म और आत्माकी एकताके ज्ञानकी संशय-विपर्ययतें रहित जो दृढता, सो अविद्याकृत जो चित्तके विक्षेप कहे आत्मा और ब्रह्मका वियोग तिसकों भलीप्रकारतें नाश करि देती है; जैसे रसायन जो है औषध सो बहुत काल सेवनतें रोगोंका नाश करि देता है ॥ ३७ ॥

अब ब्रह्म और आत्माकी एकताकी भावनाके लिये साधन कहते हैं ॥

विविक्तदेश आसीनो विरागो
विजितेंद्रियः॥भावयेदेकमात्मा-
नं तमनंतमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

विविक्तदेश इति॥ विविक्त कहे जनसंबंधरहित एकांतदेशविषे सुखपूर्वक आसन करै, और विराग कहे शब्दस्पर्शादि विषयोंविषे इच्छारहित, विशेषकरिके जीता है इंद्रियोंकों जिस पुरुषनें. सो अनन्यधी कहे आत्मा, अर्थात् अपने आपही

है. ब्रह्म दूसरा कोई है नहीं. ऐसी है तत्परबुद्धि जिसकी, ऐसा जो पुरुष है, सो अनंत कहे देशकालवस्तुपरिच्छेद अर्थात् अंत वा नाशरहित वेद और शास्त्रकरिके प्रसिद्ध आत्माका भावना करै, की एक अद्वैत चैतन्यस्वरूप वासुदेव जो संपूर्ण भूतोंविषे वास करता है, सोई चैतन्यस्वरूप वासुदेव मैं हूं, ऐसी चिंतना करै, निरंतर जिसकरिके ब्रह्म और आत्माके एकताका निश्चय होता है इति ॥ ३८ ॥

शंका—दृश्यप्रपंच व्यवहारविषे प्रत्यक्ष वर्तमान एकताकी भावना कैसी होती है ॥

उत्तर—तहां कहते हैं ॥

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य
धिया सुधीः ॥ भावयेदेकमात्मा-
नं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ ३९ ॥

आत्मनीति ॥ सुधी जो है शुद्ध अंतःकरण

वा बुद्धिवाला अधिकारी, सो विवेकवती बुद्धि-विषे संपूर्ण दृश्यप्रपंचकों लय करै. तात्पर्य यह-वाचारंभण कहे कहनमात्रही आत्मामें विकार है, तिसकों दूरि करै. अर्थात् पृथ्वीकों जलमें लय करै. जलकों अग्निमें लय करै. अग्निकों वायुमें लय करै. वायुकों आकाशमें, आकाशकों अव्याकृत अर्थात् मूलप्रकृति वा मायामें, तिसकों शुद्धब्रह्ममें लय करै. पीछे सो शुद्ध ब्रह्म व्यापक विष्णु मैं हूं ऐसा चिंतन करै. तहां दृष्टांत-निर्मलाकाशवदिति. जैसे शरत्कालविषे धूरि, मेघ आदि उपाधितें रहित स्वच्छ आकाश होता है. तैसे आत्माकों स्वच्छ एकरस संभावना करै इति ॥ ३९ ॥

शंका-संपूर्ण दृश्यप्रपंचकों त्यागिके विवेकी समाधिविषे किस रूपतें स्थित होता है, तहां कहते हैं ॥

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय पर-

मार्थवित् ॥ परिपूर्णचिदान-
न्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४० ॥

नामेति ॥ परमार्थतत्त्व आत्माकों जानिके विवेकी नाम रूप आदि दृश्यप्रपंच, जाति, मूर्ति- आदि संपूर्णकों त्यागिके, परमार्थरूप, अधिष्ठान, कूटस्थ, अंतर्यामी, सच्चिदानंदस्वरूप, साक्षी, शुद्ध, चैतन्यस्वरूप जो है आत्मतत्त्वरूप होकर, अपने आप स्थित होता है. तात्पर्य यह—चित्तका चित्तभावरहित शुद्ध ब्रह्माकार निर्वातदीपकी अखंड ज्योतिवत् स्थित होता है ब्रह्मवेत्ता ॥ " यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ॥ योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः " इति भगवद्वचनात् ॥ ४० ॥

शंका—पृथिव्यादि दृश्यप्रपंचके लय होनेतें भी समाधिविषे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयभेदरूप त्रिपुटी प्रपंचलक्षण पवनरूपके विद्यमान होनेसति

कैसे आप निर्वात दीपककी अखंडज्योतिवत् स्थित होता है. तहां कहते हैं.

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न विद्यते ॥ चिदानंदैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि ॥ ४१ ॥

ज्ञातृज्ञानेति ॥ सविकल्पसमाधिविषे ज्ञातादि त्रिपुटी भेद तौ प्रतीत होता भी है. परंतु समाधिके समयविषे भेद कोई नहीं रहता, तिसकी तिस समयमें परानंद एकरूपता हो जाती है, तिस कारणतें दीप्यते कहे प्रकाशता है इति॥ ४१॥

इस प्रकार ब्रह्म और आत्माकी एकता ज्ञानके अर्थ आत्माका ध्यानादि प्रयत्न करनेवालेका प्रत्यक्ष फल कहते हैं ॥

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते ॥ उदितावगतिर्ज्वाला सर्वाज्ञानेंधनं दहेत् ॥ ४२ ॥

एवमिति ॥ पूर्वोक्त कहीहुई रीतिसें आत्मा जो है अंतःकरण, अर्थात् मन सो नीचेकी अरनी कहे लकरी करै, और प्रणव जो हैं ॐकार सो ऊपरकी लकरी करै, तिन दोनोंकी एकताकों ध्यान कहते हैं. पतंजलि उक्त ध्यानरूप मथन अर्थात् घसना तिसका सर्वदा बहुत काल निरंतर श्रद्धापूर्वक करनेतें उदित भई जो अखंडाकार अहं ब्रह्मवृत्ति कहे ज्ञानस्वरूप ज्वाला कहे अग्निकी लपट सो संपूर्ण अज्ञान और अज्ञानका कार्य जन्ममरणरूप संसार सोई भया इंधन तिसकों भलीप्रकारतें भस्म करि देती है. तथा च श्रुतिः "आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्॥ ज्ञाननिर्मंथनाभ्यासाद्दहेत्कर्म स पंडितः" इति ४२

उदित भई ज्वाला सर्व अज्ञानरूप इंधनकों भस्म करती है सो दृष्टांतकरिके कहते हैं. निरावरण आत्माकी प्रकाशमानताका भी दृष्टांत कहते हैं ॥

ति

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसंतमसे हृते ॥ तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥ ४३ ॥

अरुणेनेवेति ॥ जैसे अरुणके उदय अर्थात् प्रकाश होनेतें प्रथम तम जो है अंधकार, सो दूरि हो जाता है. अरुण नाम है सूर्यके रथवानकों, तिसी तरह मैं ब्रह्म हूं ऐसे ज्ञानकरिके संपूर्ण अज्ञानरूप तम दूरि होनेतें पश्चात् अंशुमान् कहे सूर्यवत् आत्मा आपही प्रगट हो[illegible] है, अर्थात् निरावरणवत् प्राप्त होता है. "ज्ञा[illegible]न तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥ तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्" इति ॥ ४३ ॥

शंका—जो साक्षात् अपरोक्षतातें ब्रह्म होता है, ऐसे श्रुतिप्रमाणकरिके आत्मा नित्य प्राप्त है. काहेतें की, अपने आप कभी अप्राप्त और परोक्ष होता नहीं. सदाहीं अपरोक्ष और साक्षात्कारही

होता है, और तुम कहते हौ, की अज्ञान नाश होनेतें प्राप्त होवेगा, सो अयुक्त है.

उत्तर–नित्य प्राप्त जो है आत्मा, सो अविद्याकरिके अप्राप्तवत् प्रतीत होता है, तिस अविद्याके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत होता है, यह कहते हैं.

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्य
वदविद्यया ॥ तन्नाशेऽप्राप्तवद्भा-
ति स्वकण्ठाभरणं यथा ॥ ४४ ॥

आत्मा त्विति ॥ तत्त्वज्ञानदृष्टिकरिके आत्मा सतत कहे निरंतर यथार्थस्वरूपतें प्राप्त है, परंतु अज्ञानियोंकों अनादि अज्ञानकरिके अप्राप्तवत् प्रतीत होता है. सो श्रीगुरुकी कृपातें तत्त्वमस्यादि महावाक्यजनित ज्ञानकरिके अविद्याके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत होता है. जैसे किसी पुरुषका अपने कंठविषे प्राप्त अपनी माला तिस

कों अज्ञानकरिके अप्राप्तवत् प्रतीत होती थी, तिसके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत भई, तैंसे आत्मा भी है इति ॥ ४४ ॥

शंका—जिसकी साक्षात्कार अपरोक्षतातें ब्रह्म होता है ऐसे श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्म, सो नित्यप्राप्त भी श्रुति कहती है. जीवात्माकों नहीं कहती.

उत्तर—अज्ञान करिके भ्रमतें परमात्माही जीवपनाकों प्राप्त भया है, वास्तव कोई जीव है नहीं, सो दृष्टांततें कहते हैं.

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रांत्या कृता ब्रह्म-
णि जीवता ॥ जीवस्य तात्त्वि-
के रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तते ॥ ४५ ॥

स्थाणाविति ॥ जैसे अंधकारकरिके आवृत स्थाणुकों भ्रांतिकरिके यह पुरुष है ऐसे मिथ्या प्रतीति होती भई, तैसे अनादि अविद्याकृत

भ्रांतितें ब्रह्मविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि जीवलक्षण अर्थात् जीवपना आरोप करा, सो जीवका तात्विक अर्थात् वास्तव स्वरूप साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म तिसकों तत्त्वमस्यादि वाक्यनकरिके साक्षात् करै तौ जीवपना निवृत्त होइ. जैसे स्थाणुके निश्चय होनेतें कल्पित पुरुषकी भ्रम दूरि हो जाती है; तैसे जीवका वास्तव स्वरूप जाननेतें जीवपना नाश हो जाता है ॥ ४५ ॥

शंका—विवेकिनकों भी मेरी तेरी इत्यादि व्यवहार दृढ प्रतीत होता है, तौ कैसे तुम संसारकी निवृत्ति कहते हौ?

उत्तर—मेरी तेरी इत्यादि व्यवहार अज्ञानका कार्य है भी, परंतु तत्त्वज्ञानकरिके नाश हो जाते हैं, सो दृष्टांत कहते हैं.

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञान-

मंजसा ॥ अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ४६ ॥

तत्त्वेति ॥ जीवका जो वास्तव तत्त्वस्वरूप सच्चिदानंदात्मक लक्ष्य है तिसके अनुभव होनेतें उत्पन्न भया जो तत्त्वमस्यादि महावाक्यनतें ब्रह्म आत्माकी एकताका दृढ ज्ञान, सो तुरतही अहं मम अर्थात् मेरी तेरी यह जो है अज्ञानका कार्य तिसकी नाश करि देती है. जैसे अज्ञानकरिके दिशाओंका भ्रम और स्थाणुआदिविषे पुरुषादिका भ्रम सूर्यके दर्शन होनेतें आपही नाश हो जाते हैं इति ॥ ४६ ॥

अब निवृत्त अज्ञान कार्य विवेकियोंकी दृष्टि बरनन करते हैं.

सम्यग्विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम् ॥ एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥ ४७ ॥

सम्यगिति ॥ संशयविपर्ययरहित साक्षात्कार अपरोक्ष दृढ ज्ञानीकों योगी कहते हैं, सो योगी तिस साक्षात् अपरोक्षताकरिके ज्ञानरूपी नेत्र परिपूर्ण अधिष्ठान कूटस्थ साक्षी स्वरूपविषे अर्थात् अपनेविषे संपूर्ण नामरूप दृश्यप्रपंचकों अज्ञानकल्पित देखता है. काहेतें की, कल्पितकों अधिष्ठानकी सत्तातें रहित अर्थात् भिन्न सत्ताका अभाव है. तातें संपूर्ण दृश्य एक अद्वितीय अधिष्ठानभूत एक आत्माहीकों देखता है. आत्मातें भिन्न कल्पित कहने मात्रही शशशृंग, नरविषाण, आकाशके पुष्पवत् हैं; तिस कारणतें ज्ञानरूपी नेत्रोंकरिके ज्ञानी इस प्रकारतें देखता है ४७

शंका—जो प्रत्यक्ष आत्मातें भिन्न प्रतीत होता है जगत्, तिसको आत्मातें भिन्न कैसे देखता है ज्ञानी?

उत्तर—उपादेय अर्थात् कार्य उपादानतें

भिन्न बाध सामानाधिकरण्यकरिके अभेद देखता है, सो दृष्टांत कहते हैं.

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्यन्न विद्यते ॥ मृदो यद्वद्धटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥ ४८ ॥

आत्मैवेति ॥ यह संपूर्ण जगत् आत्माही है. काहेतें, आत्मातेंही उत्पत्ति भया है. जैसे बीजतें उत्पन्न भया जो वृक्ष है सो बीजका विस्तार है, बीजतें भिन्न वृक्षकी सत्ता है नहीं. अथवा उपादान मृत्तिकातें भिन्न उपादेय घटकी सत्ता नहीं. तैसे उपादान आत्मातें भिन्न कल्पित जगतकी सत्ता कछु है नहीं. जैसे मृत्तिकाके कार्य घट शरावादि मृत्तिकाही है, तैसे आत्माका कार्य संपूर्ण दृश्यप्रपंच आत्माही है. इस कारणतें सर्व दृश्यप्रपंचकों ज्ञानी अपना आत्मस्वरूपही देखता है. भिन्न नहीं इति ॥ ४८ ॥

इस प्रकार ज्ञानीकी वास्तव दृष्टि कही. अब तिसकी जीवन्मुक्ति अवस्था दर्शाते हैं.

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत्॥ सच्चिदानंदरूपत्वाद्भवेद्भ्रमरकीटवत् ॥ ४९ ॥

जीवन्मुक्तिरिति ॥ आत्मतत्त्व साक्षात्कार विवेकी जीवन्मुक्त पूर्व कहे तत्त्वज्ञान होनेके प्रथम अनादि अविद्याकल्पित जो देह इंद्रियादि और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादि उपाधि जो हैं, सो त्रिगुणी मायाके धर्म जानिके विवेकद्वारा त्याग न करता है, सो पुरुष सच्चिदानंदस्वरूप है, भ्रमरी कीटवत् साक्षात् ब्रह्म होता है. यहां यह आशय है—जैसे भृंगी एक कीट होता है. सो भ्रमर कीट विशेषकी भय करिके तिसके आकार अपनी चित्तकी वृत्तिकों करता है, सो प्रथम शरीरके धर्मनकों त्यागिके तिसका रूप होजाता है; तैसे ब्रह्मवेत्ता उपाधिरहित ब्रह्म हो जाता है ॥ ४९ ॥

अब जीवन्मुक्तकों श्रीरामचंद्ररूपताका अलंकारकरिके बरनन करते हैं.

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान् ॥ योगी शांतिसमायुक्तो ह्यात्मारामो विराजते ॥ ५० ॥

तीर्त्वेति ॥ आत्माविषे आराम कहे स्थिति है जिसकी, ऐसा योगी मोहार्णव कहे अज्ञानरूप समुद्रकों ब्रह्मात्मकी एकताके ज्ञानरूप पूलपर चढिके सो पार जाइ, रागद्वेषादि लक्षण रावण इत्यादि राक्षसोंकों, जिनने शांतिरूपी सीताकों हरा अर्थात् चुराया था, सो शुद्धांतःकरणरूपी धनुषतें वैराग्यविचारादि बानोंकरिके हत्वा अर्थात् नाश करिके शांतिरूप लक्षण सीताकों लेकर तिससंयुक्त सो पुरुष प्रारब्धशेष स्थिति शरीरलक्षण अयोध्याविषे स्वरूपलक्षणकरिके अपने राजविषे निवृत्तिरूप सिंहासनपर

बैठिके विशेषकरिके राजते कहे प्रकाशमान होता भया. जैसे श्रीरामचंद्रजी समुद्रकों बांधिके पार जाई रावणादि राक्षसोंकों मारिके सीतासमेत अयोध्यापुरीमें सिंहासनपर बैठि विराजमान होते भये इति ॥ ५० ॥

अब लक्षण विधानतें जीवन्मुक्तकी अवस्था अर्थात् स्थितिकों कहतेहैं ॥

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्म-
सुखनिर्वृतः ॥ घटस्थदीपवत्स्व-
च्छः स्वांतरेव प्रकाशते ॥ ५१ ॥

बाह्येति ॥ नेत्र आदि जो बाहरकीइंद्रिय हैं, तिनकी विषयोंके संबंधतें उत्पन्न भया जो विषयानंद अनित्यरूप सुख तिसविषे आसक्ति अर्थात् प्रीतिकों त्यागिके आत्मा स्वरूपके सुखकरिके निवृत्त कहे आनंदित और स्वस्थ कहे अपने स्वरूपभूत महिमाविषे स्थिति, सो पुरुष अंतः कहे

अपने अंतःकरणविषे साक्षात्कार ब्रह्मरूप प्रकाशता है. चक्षु आदि वृत्तिद्वारा बाह्य विषयोंविषे विस्तारके ज्ञानलक्षण तेजकरिके तिनके निरोधतें अंतःकरणविषे प्रकाशमान है और चेतनतारूप बाहिर भी प्रकाशता है. जैसे घटविषे वर्तमान जो दीपक सो बाह्य निवृत्ति किरणोंकरिके घटके अंतर विशेषकरिके प्रकाशता है, और उसनता आदिक बाहिर भी प्रतीत होता है ॥ "प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ॥ आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते" इति भगवद्वचनात् ॥ ५१ ॥

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः ॥ सर्वविन्मूढव-त्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५२ ॥

उपाधिस्थ इति ॥ देहादि उपाधियोंका साक्षरूपकरिके स्थित भी मुनी कहे वेदांतमनन

करनेविषे तत्पर तत्त्ववेत्ता व्योम कहे आकाशवत् जैसे आकाश भी धूरि इत्यादि उपाधियोंविषे लिप्त नहीं होता, तैसे उपाधियोंके धर्मनविषे तत्त्ववेत्ता लिप्त नहीं होता, और सर्व पृथिवीविषे फिरता है. और सर्वज्ञ भी है. गूंगे पुरुषकी तरह स्थित होता है, और प्रारब्धभोगकरिके प्राप्त विषयोंविषे आसक्त नहीं होता, वायुवत् आचरता है, जैसे वायु सुगंधिवाले पदार्थोंविषे आसक्ति अर्थात् प्रीतिरहित अपने स्वरूपहीमें चलती है. तैसे ज्ञानी भी अपने स्वरूपमें विचरता है इति ॥ ५२ ॥

अब ज्ञानीकी विदेहकैवल्यमुक्ति कहते हैं ॥

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं
विशेन्मुनिः ॥ जले जलं वियद्व्यो-
म्नि तेजस्तेजसि वा यथा ॥ ५३ ॥

उपाधीति ॥ ज्ञानीकी प्रारब्धभोगोंके

समाप्ति होनेतें देह इंद्रिय आदि उपाधि लय होती हैं, तिनके लय होनेतें मुनि जो है विवेकी सो व्यापक विष्णुपरब्रह्मविषे निर्विशेषं कहे सर्वविशेषरहित यथार्थरूपकरिके प्रवेश होता है. अत्यंत प्रवेशविषे दृष्टांत कहते हैं. जैसे जलमें जल अर्थात् नदी जो है समुद्रमें प्राप्त होकर नामरूपरहित अभेदरूप समुद्रही हो जाती हैं, तैसे विवेकी नामरूपरहित परे, ते परे जो परम पुरुष परब्रह्म है, तिसमें मिलिके अभेद हो जाता है. और जैसे घटाकाशकी उपाधीके नाश होनेतें घटाकाश महाकाशरूप हो जाता है. और तेज जो है दीपका दिवा अग्नि, सो तेजकेसाथ अभेद हो जाते हैं; तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष देहादि उपाधियोंके नाश होनेतें ब्रह्मकेसाथ अभेद हो जाता है॥५३॥

अब विदेहमुक्ति अवस्थाविषे विवेकी जिस परब्रह्मको प्राप्त होता है, तिसका निरूपण अष्टश्लोकनतें करते हैं ॥

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्ना-
परं सुखम् ॥ यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञा-
नं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५४ ॥

यल्लाभादिति ॥ जिस ब्रह्मके लाभ अर्थात् प्राप्त होनेतें जगत्‌विषे दूसरा लाभ नास्ति है. काहेतें, जिसकी परम पुरुषार्थतारूपकरिके संपूर्ण लाभ तिसके अंतर्भूत हैं, और जिस ब्रह्मके स्वरूप-सुखतें परे कोई सुख है नहीं; काहेतें, तिसकों निरतिशय कहे सर्वतें अधिक सुख होनेतें क्षुद्र सुख तिसके अंतर्भूत हैं, और जिस ब्रह्मके साक्षात्कार ज्ञानके परे और ज्ञानकी नास्ति है. काहेतें, ब्रह्मवेत्ताही ब्रह्म होता है, ऐसे श्रुतिप्रतिपादित ज्ञानका परम पुरुषार्थका हेतु होनेतें अतिश्रेष्ठ हैं, इस प्रकारका ब्रह्मस्वरूप जिस रूपकरिके विदेहकै-वल्य अवस्थाविषे विवेकी स्थित होता है, तिस ब्रह्मस्वरूपकी निश्चय करै इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ॥ यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५५ ॥

यद्दृष्ट्वेति ॥ जिस ब्रह्मकों देखि अर्थात् साक्षात्कारके परे और देखना नास्ति है. काहेतें अधिष्ठानरूपके साक्षात्कार होनेतें संपूर्ण कल्पित, जगत् साक्षात्कार हो जाता है, और जिस ब्रह्मके रूप होनेतें अर्थात् एकता प्राप्त होनेतें फेरि संसारमें जन्म नहीं होता. "यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम" इति भगवदुक्तेः ॥ और जिस ब्रह्मके सामान्यकरिके सर्वके उपादानरूपके जाननेतें और कछु जाननेकों नास्ति है. काहेतें की, कार्यकी कारणतें भिन्न सत्ता है नहीं. सो कारणके जाननेतें संपूर्ण कार्य जाना गया. जैसे मृत्तिकाके एक पिंडकों जानेतें तिसके संपूर्ण घटादि कार्य जाने गये 'तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्' तिस ब्रह्मकी निश्चय करै इति ॥ ५५ ॥

शंका—विदेहकैवल्य अवस्थाविषे तत्त्ववेत्ता जिसब्रह्मकों प्राप्त अर्थात् स्वरूप होता है सो ब्रह्म परिच्छिन्न है, की अपरिच्छिन्न कहे व्यापक है? जो कहौ परिच्छिन्न है तौ नाशमान होनेतें परम पुरुषार्थ न सिद्ध भया और जो कहौ व्यापक है, तौ प्राप्ति बनती नहीं.

उत्तर—जिसकी परिपूर्ण नित्य आनंदरूपताकरिके पुरुषार्थता है. यह कहते हैं ॥

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानंदमद्वयम् ॥ अनंतं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

तिर्यगिति॥जो सच्चिदानंद अद्वैत कहे द्वैतप्रपंचरहित वस्तु तिर्यक् कहे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और नीचे ऊपर, सर्वत्र पूर्ण है. और अनंत कहे देश, काल, वस्तु परिच्छेदसें रहित है. और नित्य कहे सत्य है. एक कहे सजातीय विजा-

तीय स्वगत भेदतें रहित है. तिस ब्रह्मकी मुमुक्षु निश्चय करै इति ॥ ५६ ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदांतैर्ल-
क्ष्यतेऽव्ययम् ॥ अखंडानंदमे-
कं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७ ॥

अतदिति ॥ अतत् कहे जगत् तिसकी व्यावृत्ति कहे निवृत्तिरूप अर्थात् परमार्थरूपकरिके जिसकों वेदांत लक्ष्य कहे वास्तवस्वरूप लक्षणाकरिके निश्चय करावते हैं. सो ब्रह्म अद्वैत है कहे अविद्याकल्पित जगत्का जिसविषे भाव नहीं, और अखंड कहे सुखस्वरूप केवल निर्विकार जो ब्रह्म है तिसकी निश्चय करै विवेकी इति ॥ ५७ ॥

शंका—ब्रह्मा इंद्रादि श्रेष्ठ देवतनकों भी निरतिशय आनंदवाले शास्त्रनमें सुनते हैं. तुम कैसे केवल ब्रह्महीकों निरतिशयरूप कहते हौ ?

उत्तर—तिन ब्रह्मा इंद्रादिककों भी जो क्षु-

द्धानंद है सो ब्रह्मानंदका लेश अर्थात् अंशकों लेकर संपूर्ण आनंद होते हैं. और ब्रह्मानंदतें परे जगत्‌विषे दूसरा कोई आनंद है नहीं, यह कहते हैं.

अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदल-
वाश्रिताः ॥ ब्रह्माद्यास्तारतम्येन
भवंत्यानंदिनोऽखिलाः ॥ ५८ ॥

अखंडेति ॥ जिस ब्रह्मका अपरिच्छिन्न आनंदस्वरूप है, तिसके आनंदसमुद्रस्वरूप परमात्माके आनंदका लव कहे सुखके लेशके आश्रय होकर ब्रह्मा इंद्र आदिक तारतम्य कहे कमती बढती अपनी अपनी पुण्यके अनुसार आनंदवाले होते हैं, सो सर्व ब्रह्मानंदके अंतर्भूत हैं, तातें जिस ब्रह्मानंदके लेश कहे कणिकामात्रतें ब्रह्मा इंद्रादिकों पुण्यके अनुसार क्षुद्रानंदका सुख प्राप्त होता है, तिसी ब्रह्मविषे विवेकी विदेहकैवल्य अवस्थाविषे स्थित होता है, यह भाव है इति ॥ ५८ ॥

शंका—यह आनंदस्वरूप ब्रह्म कहांपर रहता है. जिसके आनंदके लेशकरिके ब्रह्मा आदि आनंदताकों प्राप्त होते हैं ॥

उत्तर—ब्रह्मका देश काल है नहीं. काहेतें, की ब्रह्म सर्वगत है, सो दृष्टांततें कहते हैं ॥

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ॥ तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥ ५९ ॥

तद्युक्तमिति ॥ तिस सच्चिदानंद ब्रह्मके रूपकरिके युक्त संपूर्ण घटपटादि पदार्थ अस्ति भाति प्रियरूपकरिके प्रकाशमान होते हैं. व्यवहार कहे वचन, दान, गमन, विसर्ग, आनंद, क्रिया सच्चिदानंदरूप ब्रह्मकरिके युक्त व्यवहार सिद्ध होता है. "सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्" इति भगवद्वचनात्, तातें सर्व पदार्थनविषे गत और तिसकरिके युक्त संपूर्ण व्यवहार होते

हैं; जैसे सर्पि जो घृत है, जो सर्वत्र दुग्धविषे अभेदरूपकरिके व्याप्त है, और तिसकरिके दुग्धविषे मधुरतादिक गुण भी हैं. तैसे सर्व वस्तुनविषे ब्रह्म अभेदरूप होकर व्याप्त है इति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार प्रपंचविषे परमात्माकी अनुगतता भी है; परंतु तिस प्रपंचके धर्मनविषे ब्रह्मका स्पर्श नहीं. काहेतें की वह असंग है, यह कहते हैं ॥

अनणवस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ॥ अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६० ॥

अनण्विति ॥ शंका—सर्वगत जो आत्मा है सो अणुप्रमाण है, और श्रुति भी कहती है. एक अणु आत्मा जाननेके योग्य है.

उत्तर—आत्मा अणुमात्र नहीं, और जो श्रुति कहती है आत्मा अणुमात्र है, सो श्रुतिका तात्पर्य यह है, की आत्माका स्वरूप जाननेकों

दुर्विज्ञेय अर्थात् अतिकठिन है. और श्रुतिका तात्पर्य यह नहीं, की आत्मा अणु है इति ॥

शंका—आत्मा अणुप्रमाण नहिं है, तौ न होउ पर महान् तौ है, और श्रुति भी कहती है, आत्मा महान्तें भी महान् है ॥

उत्तर—आत्मा स्थूल नहीं इस कारणतें आत्मा महान् नहीं. जो महाप्रमाणवाले स्थूल घटपटादि पदार्थ हैं, सो जड होनेतें अनित्य हैं, और श्रुतिका तात्पर्य यह है, की सर्वके अधिष्ठानतारूप होनेतें सर्वतें आत्माकी श्रेष्ठता है, महान् पदका परिमाणसाधक अर्थ नहीं, और अऱ्हस्व कहे आत्मा ऱ्हस्व परिमाणतें रहित है. अदीर्घ कहे दीर्घ परिमाणरहित है, ऐसे श्रुतिप्रतिपादित जो अज कहे जन्मतें रहित, अव्यय कहे नाशरहित, अरूप कहे सत्वादि परिणामरहित, और ब्राह्मणादि वर्णरहित ब्रह्म है. तिसका मुमुक्षुनें निश्चय करना इति ॥ ६० ॥

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ॥ येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६१ ॥

यद्भासेति ॥ जिस ब्रह्मके भासा कहे अलौकिक तेजकरिके सूर्यादि भासते कहे प्रकाशमान् होते हैं, और सूर्यादिकभी भास्य कहे प्रकाशतें जो नहीं प्रकाशता, और जिस ब्रह्मविषे सूर्य, चंद्रमा, बिजुली आदिकका प्रकाश है नही, तौ अग्निकी कौन गिनती है ? और जिस ब्रह्मके प्रकाशकरिके सूर्यादिक प्रकाशते हैं, और संपूर्ण जगत् प्रकाशमान होता है तिस ब्रह्मका निश्चय करना इति ॥ ६१ ॥

इस प्रकार विदेहकैवल्यकेविषे जिस रूपकरिके विवेकी अस्थित होताहै, तिस ब्रह्मका निरूपण किया. अब परमपुरुषार्थकी हेतुता फेरिभी तत्त्ववेत्ताकी निश्चयकों दिखाते हैं ॥

स्वयमंतर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखि-
लं जगत् ॥ ब्रह्म प्रकाशते वह्नि-
प्रतप्तायसपिंडवत् ॥ ६२ ॥

स्वयमिति ॥ तीनि श्लोकनकरिके पर कहे परमात्मा संपूर्ण जगत्के बाहर भीतर व्यापक भासयत् कहे प्रकाशता है. जैसे तप्त लोहके पिंडविषे व्याप्त बाहर भीतर अग्नि प्रकाशता है, तैसे चराचर नामरूप दृश्य जगत्के बाहर भीतर प्राप्त परमात्माही अस्ति, भाति, प्रियरूपकरिके अर्थात् सत्ता, चेतनता और आनंदरूपताकरिके प्रकाशता है. यह भाव है इति ॥ ६२ ॥

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न
किंचन ॥ ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मि-
थ्या यथा मरुमरीचिका ॥ ६३ ॥

जगदिति ॥ असत् जड दुःखरूप अविद्या-कल्पित जो जगत् है, तिसतें विपरीत सत् चित्

आनंदस्वरूप ब्रह्म भिन्न है, तिस कारणतें ब्रह्मतें अन्यत् कहे भिन्न किंचित् भी कछु है नहीं, और ब्रह्मतें भिन्न जो कछु पदार्थ प्रतीत होते हैं, सो मृगतृष्णाके जलवत् योंही मिथ्या प्रतीत होते हैं. वास्तव कछु है नहीं इति ॥ ६३ ॥

सो प्रत्यक्ष फिरि भी कहते हैं ॥

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत् ॥ तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानंदमद्वयम् ॥ ६४ ॥

दृश्यत इति ॥ जो नेत्रोंकरिके देखते हैं और जो कर्णोंकरिके सुनते हैं, और मनकरिके स्मरण अर्थात् मनन करते हैं, और बानीकरिके जो कहते हैं, सो संपूर्ण सच्चिदानंद अद्वैत ब्रह्मही है, ब्रह्मतें भिन्न और कछु है नहीं, ऐसे तत्त्वज्ञान-करिके तत्त्ववेत्ता पुरुष जानते हैं. यह भाव है इति ॥ ६४ ॥

शंका–सच्चिदानंद ब्रह्मरूप तुम सर्व जगत्‌कों कहते हौ, तौ सर्वत्र देखि काहे नहीं परता.

उत्तर–सच्चिदानंद ब्रह्म सर्वगत भी है, परंतु तत्त्वज्ञानदृष्टिवाले पुरुष देखते हैं, अज्ञानदृष्टिकरिके देखनेकों ब्रह्म दुर्दर्श्य अर्थात् देखनेकों दुर्लभ है. यह कहते हैं ॥

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते ॥ अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वंतं भानुमंधवत् ॥ ६५ ॥

सर्वगमिति ॥ सत् चित् आनंद आत्मा सर्वगत भी है, पर तिसकों ज्ञानरूपी नेत्रवाले पुरुष देखते हैं. श्रुति भी कहती है, की नेत्रोंकरिके आत्माका ग्रहण नहीं होता, और वाणीकरिके कहा नहीं जाता. मनकरिके मनन नहीं होता, और नामरूप देवतनके निमित्त तपकरिके अथवा कर्म शुभाशुभकरिके प्राप्त नहीं होता. के-

वलज्ञानकेप्रसादकरिकेविशुद्धसत्वद्वारा विवेकरू-
प नेत्रोंतें निष्कल परमात्मस्वरूपकों विवेकी पुरु-
ष देखते हैं. और अनादि अविद्याकरिके आवृत हु-
ई नेत्रोंकी दृष्टि जिनकी, ऐसे जो हैं अज्ञानी, सो
साक्षात्कार प्रकाशमान साक्षी अपने आत्मस्व-
रूपकों नहीं देखते. जैसे प्रत्यक्ष प्रकाशमान सूर्य-
कों नेत्रहीन पुरुष नहीं देखता है, तैसे विवेकरूप
नेत्रोंतें रहित पुरुष आत्मस्वरूपकों नहीं देखि
शकता इति ॥ ६५ ॥

शंका—ज्ञानरूपी नेत्रवाले पुरुषनें विवेक-
के बल करिके देहइंद्रियादिक विषयोंविषे अध्यास-
लक्षण मलकों दूरि भी. करता है. पर पूर्वजन्म-
के अध्यासतें संसाररूपी वासनाके वशीभूत हो-
कर फेरि भी अहं मनुष्य, ऐसा देहीका अभिमा-
नरूप बंधन प्रतीत होता है, तो कैसे स्वरूप-
स्थितिकों शुद्ध सत्वद्वारा तुम मुक्ति कहते हो,
तातें तुह्मारा कहना अयुक्त है. तहां कहते हैं ॥

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निप-रितापितः ॥ जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ॥६६॥

श्रवणादिभिरिति ॥ श्रवण, मनन, निदिध्यासनकरिके उत्पन्न भई अति उत्कृष्ट प्रकाशमान जो अग्नि, तिसकरिके परितप्त हुवा अर्थात् दग्ध हुवा जीवका संपूर्ण मल कहे संसारभूत अज्ञान, तिसका कार्य जो है जगत्, तिसतें मुक्त कहे रहित पुरुष सुवर्णकी तरह आपही शुद्ध प्रकाशमान होता है. तात्पर्य यह स्वस्वरूप सच्चिदानंदलक्षण आत्मस्वरूप प्रकाशता है. तिस पुरुषका अहं मनुष्य ऐसा अभिमान फिरि किसी तरहतें नहीं होता इति ॥ ६६ ॥

शंका—इस प्रकार शुद्ध करा हुवा आत्मा कैसा होता है, और कहां उदय अर्थात् प्रगट होता है, और किसको प्रकाशता है सो कहते हैं ॥

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभा-
नुस्तमोऽपहृत् ॥ सर्वव्यापी सर्व-
धारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥ ६७ ॥

हृदाकाशेति ॥ इस प्रकार शुद्ध कराहुवा जीव आत्मा और परमात्माकी एकतारूप लक्षणकरिके लक्षित हुवा, सो बोधरूप सूर्य अर्थात् ज्ञानस्वरूप सूर्य, हृदयरूप आकाशमें प्रगट वा प्राप्त होता है, सो सर्वकों भाति कहे प्रकाशता हैं, और आत्मा आप स्वयंप्रकाश है ॥

शंका—हृदयरूप आकाशविषे प्रगट होता है, सो हृदयाकाशपरिच्छिन्न अर्थात् नाशमान है, तौ तिसके साथ आत्मा भी परिच्छिन्न मानना चाहिये, तहां कहते हैं ॥ सर्वव्यापीति ॥ आत्मा सर्व प्रपंचविषे व्यापक है, और सर्वधारी कहे अज्ञानकार्य जगत्का अधिष्ठान है, तात्पर्य यह की कार्यकरिके कारणकी हानि नहीं होती इति ॥६७॥

अब सर्व पुरुषोंकों अपने आत्मस्वरूपतत्त्वकों तीर्थरूप करिके बरनन करते हैं. तिसके सेवनतें जो फल होता है, सो सर्व तीर्थके फलका शिरोमणि है. तात्पर्य यह—सर्व कर्म और सर्व तीर्थ और सर्व देवतनका सेवनरूप जो फल हैं, तिन सर्व फलोंका शिरोमणि अद्वैत आत्माही फल है. तिसकी सेवा अवश्य करनी चाहिये. काहेतें की, सेवनीय अवश्य आत्माही है, तिसके सेवनतें कोईभी सेवा विशेष नहीं रहती, सो कहते हैं ॥

शंका—स्वाभाविक पापनके दूर करनेके अर्थ तत्त्ववेत्ता भी प्रयागादि तीर्थनकी यात्राका उद्यम करते हैं, तुम कैसे सर्व मलतें रहित स्वर्णवत् प्रकाशमान आत्माकों कहते हो ?

उत्तर—अपनी आत्मस्वरूप तीर्थविषे स्नान करनेवाले पुरुषकों कछु भी कर्तव्य है नहीं, यह कहते हैं ॥

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं शी-
तादिह्नन्नित्यसुखं निरंजनम् ॥ यः
स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः स
सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥ ६८ ॥

दिग्देशेति॥ जो सर्व क्रियातें रहित परमहंस अपने आत्मस्वरूप तीर्थविषे स्नान करनेवाले अर्थात् भजनेवाले हैं. तात्पर्य यह—जो एकाग्रचित्त होकर आत्मतत्त्वकों विचार वा सेवन मनन करते हैं, सोई सर्ववेत्ता और सर्वज्ञ कहे सर्वके जाननेवाले सर्वगत कहे व्यापक परमात्मस्वरूप, सो अमृत कहे मुक्त हैं. कैसा है आत्मारूप तीर्थ, दिग् कहे पूर्वादि दिशा और वैकुंठ, कैलास, मृत्युलोकादि देश और भूत भविष्य वर्तमानकाल आदिकी इच्छातें रहित है. काहेतें, सर्वगत कहे व्यापक है. इस कारणतें देश कालादिकी इच्छा आत्मतीर्थविषे नहीं. और प्रयागादि तीर्थ संपूर्ण

देशकालवाले हैं. और परिच्छिन्न भी हैं. तातें इनतें आत्मतीर्थ भिन्न है, फेरि कैसा है आत्म-तीर्थ, शीतादिहृत् कहे शीत उष्णादि द्वंद्व दुःखों-के हरनेवाला है, जिसतें आत्मा नित्यसुख सर्वदा सुखस्वरूपही है, और प्रयागादि तीर्थ, शीत उ-ष्णादि द्वंद्व दुःखोंके देनेवाले हैं, और महामारी परती है, तौ मूलतेंही विनाश करते हैं. फेरि कैसा है आत्मा, निरंजन कहे मायाका जो है कार्य जगत्रूप मलतें रहित है,और प्रयागादि तीर्थ की-चकादि सहित हैं. तातें मुमुक्षु पुरुषकों स्वात्म-तीर्थ अवश्य सेवना है, दूसरा कर्तव्य और कोई है नहीं. तदुक्तं महाभारते "आत्मा नदी संयमतो-यपूर्णा सत्यावर्ता शीलतटा दयोर्मिः ॥ तत्राभिषेकं कुरु पांडुपुत्र न वारिणा शुध्यति चांतरात्मा" इति ॥ भागवतेऽपि "साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ॥ तीर्थीकुर्वंति तीर्थानि स्वांतःस्थेन गदा-भृता ॥ १ ॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिला-

मयाः । ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः" इति॥ अत्र साधवः स्वात्मतीर्थे कृतस्नाना इत्यर्थः "स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्ता च सर्वावनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः ॥ संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ॥ कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा पुण्यवती च तेन॥ अपारसच्चित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥ मम भवेद्गुरुणां पदकंजयोरिह परत्र गतिः पदयोर्नतिः ॥ वसति यत्र विमुक्तिरहर्निशं तदुपमां कथयामि कथं गिरः ॥ ६८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यकृत आत्मबोधः समाप्तः ॥

इति श्रीमन्माधवानंदपरमहंसपरिव्राजविरचिता (आत्मबोधाख्यप्रकरणस्य) सुबोधिनी भाषाटीका समाप्ता ॥ शुभं भवतु ॥



मो० राम पकड़ी
पो० रुट प्राप्ती प्रजर्जी [illegible]
राम ने वास पांडे गाँव के ना[illegible]
पकड़ी
जि० ग्वारा

~~अब आशीर्वादः~~

प्रारम्भ

१८९
आशा

२

आशीर्वाद श्री
नवनीत